ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण



वर्ष ७४

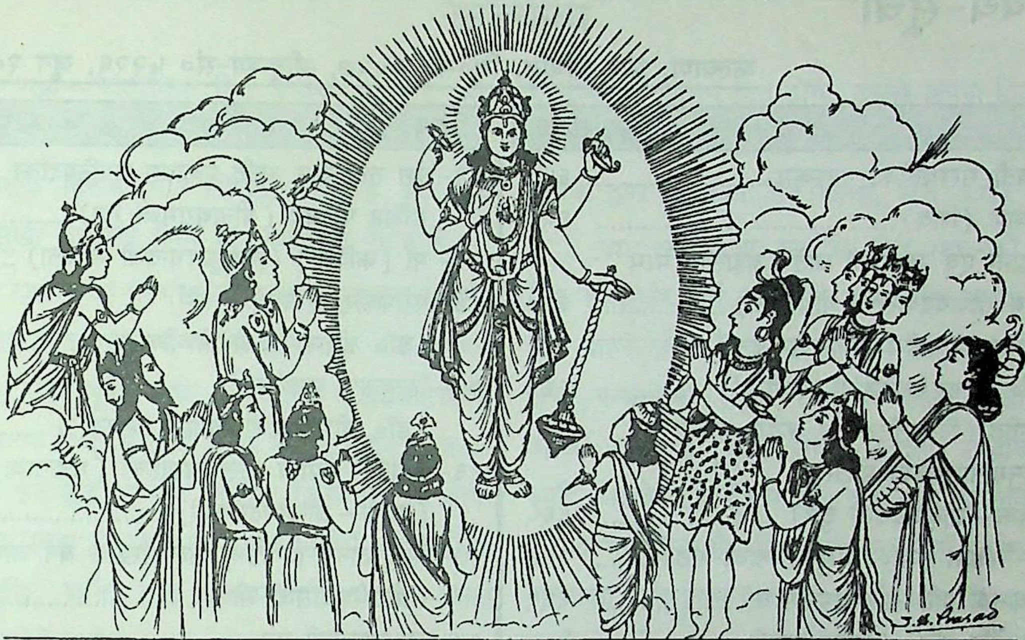
गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ६



श्रीसरस्वतीदेवी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥

वर्ष ७४

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, जून २०००ई०

संख्या ६

पूर्ण संख्या ८८३

भगवती सरस्वतीको नमस्कार

नवार्कबिम्बद्युतिमुद्गलद्धलत्-
ताटङ्ककेयूरकिरीटकङ्कणाम् ।
स्फुरत्क्वणन्नूपुररावरञ्जितां
नमामि कोटीन्दुमुखीं सरस्वतीम्॥

नवीन सूर्यके बिम्बकी द्युतिको विकीर्ण करने और हिलनेवाले रत्नमय कर्णफूल, केयूर, किरीट और कङ्कण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं तथा जो चमकते और झनकारते हुए नूपुरोंके शिञ्जन-रवसे रञ्जित होती हैं, उन कोटि चन्द्रमाओंसे अधिक उज्ज्वल मुखवाली सरस्वतीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।

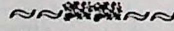


हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि०सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, जून २००० ई०



चित्र-सूची



इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित १०० रु०
(सजिल्द ११० रु०)
विदेशमें—
US$11 (Sea Mail)
US$22 (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) १००० रु०
(सजिल्द ११५० रु०)

संस्थापक— ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक— नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक— राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

कल्याण

याद रखो—वास्तविक हित उसीका होता है और उसीको परिणाममें सच्चे सुखकी प्राप्ति होती है, जो सदा-सर्वदा दूसरोंके हितकी बात सोचता-करता है और सदा दूसरोंको सुखी बनानेके लिये ही प्रयत्नशील रहता है।

याद रखो—जो पुरुष दूसरोंके हित-सुखका सम्पादन अपना कर्तव्य समझेगा, स्वाभाविक ही उसके अन्त:करणमें त्याग, दया, सहानुभूति, सेवा, संयम तथा शुद्ध सदाचारके भावोंका उदय तथा संवर्धन होता रहेगा; और जितना-जितना वह इन शुद्ध भावोंके अनुसार क्रिया करनेमें तत्पर होगा, उतना-उतना ही उसके इन पवित्र भावोंमें अधिकाधिक उत्कर्ष, शुद्धि, शक्ति तथा उल्लासमयी धाराका प्रवाह तीव्ररूपसे बहने लगेगा।

याद रखो—जिसके पास जो कुछ होता है, वह न चाहनेपर जगत्‌को सहज ही वही देता है। गुलाब सुगन्धका वितरण करेगा और मल दुर्गन्धका—स्वभावसे ही और जिन वस्तुओंका जितनी दूरतक अधिक विस्तार होगा, उन्हींका अन्य लोगोंमें भी—उतनी ही दूरतक प्रभाव होगा। लोग वैसे ही बनने लगेंगे। अतएव जिनके हृदयमें सद्भावोंका भण्डार है, उनके द्वारा सदा सत्कर्म होते हैं। उन्हींका अन्य लोगोंमें भी प्रचार, प्रसार तथा विस्तार होता है—उनसे फिर दूसरोंमें। इस प्रकार अपना तथा जगत्‌के लोगोंका सहज ही कल्याण होता है। इसी प्रकार इसके विपरीत दुर्भावों तथा दुष्क्रियाओंसे अपना तथा जगत्‌के अन्य लोगोंका निश्चित अहित होता है।

याद रखो—प्राणिमात्र सुख चाहता है और वस्तुत: हित ही सच्चा सुख है, इसलिये अपना हित चाहनेवालेको चाहिये कि वह जब-जब अपने हितकी बात सोचे-करे, तब-तब यह ध्यान रखे कि इससे दूसरे प्राणियोंका अहित तो होना ही नहीं चाहिये, पर उनका हित निश्चित होना चाहिये; क्योंकि जिस कार्यके परिणाममें दूसरोंका अहित होता है, उससे अपना हित होता ही नहीं और जिससे दूसरोंका परिणाममें हित होगा, उससे अपना हित निश्चय ही होगा। अतएव सुख चाहते हो तो अपने प्रत्येक विचार तथा कर्मके द्वारा दूसरोंका हित सोचो, हित करो।

याद रखो—जो दूसरोंके हित-साधनको ही अपना हित समझकर कर्म करता है, सभी लोग सहज ही उसका हित चाहने लगते हैं। अत: उसके सुहृदों, हितचिन्तकों तथा सच्चे बन्धुओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सभी ओरसे उसे सहानुभूति, सेवा, सुहृदता, सद्भावना, सुरक्षा आदि मिलते रहते हैं। फलत: वह स्वयं शान्तिका मूर्तिमान् प्रासाद बन जाता है और उसके सम्पर्कमें रहनेवालोंको भी शान्तिका परम लाभ होता है। जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; जहाँ अशान्ति है, वहीं दु:ख है। अशान्तके लिये सुख कहाँ? **'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'** (गीता २। ६६)

याद रखो—जहाँ दूसरोंके हितके लिये त्याग है, वहीं यथार्थ प्रेमका उदय होता है। त्याग प्रेमसे मिलता है और प्रेमसे त्याग बढ़ता है। यों उत्तरोत्तर त्याग और प्रेममें होड़-सी लग जाती है और इससे एक त्यागमय, विशुद्ध, परम निर्मल तथा परम मधुर भावोंका सुख-सागर लहरा उठता है; जिसमें अवगाहन करके, जिसके एक बूँदका आस्वादन करके भी मनुष्य अपूर्व सुखका अनुभव करता है।

याद रखो—किसीको अपना बनाना हो, मित्र बनाना हो, सुहृद् बनाना हो तो उसके अपने बनो, उसके मित्र बनो और उसके सुहृद् बनो। यही सबपर सात्त्विक विजय प्राप्त करनेका साधन है, इसीकी जगत्‌को आवश्यकता है और यही परहितका भाव जब भगवत्पूजा बन जाता है, तब प्रत्येक प्राणीके साथ होनेवाले प्रत्येक सद्व्यवहारसे उस प्राणीके रूपमें अभिव्यक्त भगवान्‌की पूजा होती है और फलत: जीवन सुख-शान्तिमय तो बीतता ही है, मानव-जीवनके परम तथा चरम लाभ भगवत्प्राप्तिसे भी मनुष्य सुसम्पन्न हो जाता है। कृतार्थ हो जाता है—उसका जन्म-जीवन!—**'शिव'**

सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें*

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कई सिद्धान्तकी बातें सुनायी जाती हैं। जिस कामको हम नीचे दर्जेका समझते हैं, जिसे हम करना भी नहीं चाहते, वही काम भावसे ऊँचा हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने, जो महान् आदर्श पुरुष थे, गीतामें उपदेश दिया है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(३।२१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

दो बातें हैं—एक, महापुरुषके द्वारा निर्णय की हुई बात और दूसरी, जो महात्मा खुद उत्तम आचरण करते हैं—उनके अनुसार चलना। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायकने कितना कायदा रखा, जो उनको जैसा भजते हैं, उनको वे उसी प्रकार भजते हैं। जो उनको अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं, भगवान् उनके लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। अपने-आपतकको दे डालते हैं। छोटे-बड़ेका भाव भगवान्के हृदयमें नहीं है। भगवान् समझते हैं कि आत्माकी दृष्टिसे जीवमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि आत्मा एक है। यह उच्चकोटिका सिद्धान्त है। हमें भी यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि जो अपनेको हमारे समर्पण कर देता है, हमें भी अपने-आपको उसके समर्पण कर देना चाहिये। प्रेमका बदला रुपया-पैसा नहीं है। जीवनका बदला (मूल्य) जीवन है। प्रेमके बदलेमें रुपया दे देना ठगाई है। भगवान् प्रेमके बदले धन देते हैं तो यह बधाऊ (अतिरिक्त) देना है। वे अपनी भक्ति भी देते हैं। जैसे—ध्रुवको राज्य दिया और अपनी भक्ति भी। जो ठगता है वह ठग है और जो ठगाता है वह ठाकुर कहलाता है। ऐसा होना चाहिये। सबके साथ उदारताका बर्ताव करना चाहिये।

युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें भगवान्ने क्या काम किया? ब्राह्मणोंके चरण धोना और जूठी पत्तल उठाना—यह काम किया। भगवान् जब यह काम करते हैं तो यह काम छोटा नहीं, बड़ा हो गया। अपनी इच्छासे पत्तल उठाते हैं, जिसकी पत्तल उठाते हैं, उसको पाप नहीं लगता। यदि वह पाप समझे तो खुद उठा लो। उठानेवालेको फायदा होता है और जिसकी उठाते हैं उसको नुकसान होता है। बात तो सच्ची कहनी चाहिये। हम वटवृक्षके नीचे बैठते हैं तो वटवृक्षका हमारे ऊपर ऋण है, इसकी सेवा करना हमारा धर्म है। हमको इसके ऋणसे मुक्त होनेके लिये इसमें जल डालना चाहिये। जल डालना सेवा है। सेवाके कामको बहुत आदर देना चाहिये। सेवा उच्चकोटिकी चीज है। महर्षि वेदव्यासजीने शूद्रको धन्य बताया, क्योंकि एक ही कामसे उसका कल्याण हो जाता है। उन्होंने स्त्रीको भी धन्य कहा, क्योंकि स्त्री पतिव्रत-धर्मसे, ईश्वरकी सेवासे, भक्तिसे परमगतिको प्राप्त हो जाती है। सुहागिन स्त्रीको भी भगवान्की भक्तिसे परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है। यह बात विशेष है। पतिके मरनेके बाद पतिके आदेशका पालन करती है तो वह भी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाती है। स्त्री पतिव्रता हो, पति पापी हो तो पतिव्रताके प्रभावसे उस पतिकी उत्तम गति हो जाती है। पतिव्रताकी उत्तम गति होती है, पति यदि पापके कारण नरकमें जाय तो पतिव्रताके प्रभावसे वह भी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाता है। पतिव्रता पतिसहित उत्तम गतिको जाती है, यह सिद्धान्त है।

बन्दा सत नहिं छाँड़िये सत छाँड़े पत जाय।
सत की बाँधी लक्ष्मी फेर मिलेगी आय॥

जिस कामका कोई ग्राहक नहीं हो, उसको हमें करना चाहिये।

भरतजीने हनुमान्से पूछा—तुम कौन हो? हनुमान्जीने जवाब दिया। मैं श्रीरघुनाथजीके दासोंका दास—किंकर हूँ। हनुमान्जी अपनेको सुग्रीव, अंगद, जामवन्तका भी दास मानते हैं। लंकामें भी यही कहा—मैं रघुनाथजीके दासोंका

* प्रवचन—दिनाङ्क २५।३।१९४७, प्रातःकाल ७॥ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

दास हूँ। अंगदने भी रावणसे कहा था—लंकामें जो बंदर आकर आग लगा गया था, वह तो मेरा एक किंकर था। महावीरके कितने ही उपासक हैं और उनके नामपर बहुत-सी संस्थाएँ हैं। हनुमान्‌जीको दासभाव प्रिय है, सखाभाव नहीं। वह तो कहते हैं—मैं तो सुग्रीवका दास हूँ, सखा नहीं। सुग्रीव तो भगवान्‌के सखा थे, अतएव संसारमें सुग्रीवकी पूजा नहीं हो रही है, हनुमान्‌जीकी हो रही है। जो अपने-आपको बड़ा मान लेता है, वह सबसे नीचा है, उसकी अधोगति होती है। जो अपनेको नीचा समझता है, उसको भगवान्‌की प्राप्ति होती है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

यह भगवान्‌के अनन्य भक्तका लक्षण है। भगवान् कहते हैं—ऐसे भक्तके पीछे-पीछे मैं जाता हूँ, जिससे उनके चरणोंकी धूलि मेरे मस्तकपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ। दुर्वासाके प्रति भगवान्‌ने कहा—'**अहं भक्तपराधीनः**' मैं अपने अपराधीको क्षमा कर सकता हूँ, पर मेरे भक्तके अपराधीको क्षमा करनेमें मैं असमर्थ हूँ। मेरे अपराधीको भक्त क्षमा कर सकता है। अम्बरीष तो हाथ जोड़े खड़े हैं, वे सुदर्शनसे प्रार्थना करते हैं कि आप ब्राह्मणपर क्षमा करें। राजा अम्बरीषका भाव था—सबके चरणोंका सेवक बनकर रहना। फिर क्रोधकी मूर्ति दुर्वासाको भी अम्बरीषके विनयकी प्रशंसा करनी पड़ी। यह सिद्धान्तकी बात है। नीचे-से-नीचा काम हो, जिसे करनेके लिये कोई नहीं मिले, उसे अपने करनेके लिये पहला नम्बर ले। बीमारीसे हम घृणा करते हैं तो भगवान् हमारेसे दूर भागते हैं। बीमारी भी भगवान्‌का स्वरूप है या यों समझे कि भगवान् उसके अन्तर्गत हैं, इसलिये उसकी सेवा भगवान्‌की सेवा है। आतुरताके समय दान देनेका बड़ा महत्त्व है। आतुर चाहे पशु हो, उसकी सेवा करनी चाहिये। यह सिद्धान्तकी बात, कीमती बात है। भगवान् अपने असली रूपमें आयें और उनको भोजन करायें, इस बातको इतना महत्त्व नहीं देकर एक अतिथि—अभ्यागत जो आतुर हो, उसके रूपमें भगवान् आये हैं, ऐसा मानकर इनको विशेष आदर देना चाहिये। शास्त्रोंमें ऐसी अनेकों कथाएँ आती हैं, जहाँ भगवान् इसी प्रकारके रूपमें मिले।

भगवान्‌की यह कृपा है कि सात्त्विक पुरुषको अन्तकालमें तामसी स्मृति हुई तो उसको अधिक नुकसान नहीं होता, परंतु तामसी पुरुषको अन्तकालमें सात्त्विक स्मृति होगी तो अधिक लाभ ही होगा। जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो तबतक साधकको विशेष सावधान रहना चाहिये कि किसी कारणसे कहीं फँसाव न हो जाय। जड़भरत राजर्षि थे। हिरणमें थोड़ी आसक्ति हो गयी तो कुछ बाधा आ गयी। दूसरोंके लिये भी सकाम प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उससे अलौकिक शक्ति नष्ट होती है।

मेरेसे कोई पूछे कि तुम्हें परमात्माकी प्राप्ति हुई या नहीं, तो मैं यही कहूँगा कि मैं नहीं बताता। कोई बीमार है, वह पूछे कि मैं मरूँगा या नहीं, तो प्रायः मैं नहीं बताता। नहीं बतानेमें लाभ है, क्योंकि भगवान्‌को यह बताना होता तो वे खुद ही पहलेसे बता देते। नहीं बतानेमें लाभ है। यदि कहें कि मर जायगा तो वह दवा आदि साधन नहीं करेगा, यदि कहें नहीं मरेगा तो भी साधन नहीं करेगा। शास्त्रोंमें यह बात आती है कि मरनेवालेको बता भी देते हैं और नहीं भी। मैं यह नहीं कहता कि जो बता देते हैं वे भूल करते हैं। यह तो महात्माकी बात है। मैं कहूँ कि मुझे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई तो हजारों लोगोंको निराशा हो जायगी कि जब इसको भी प्राप्ति नहीं हुई तो साधन क्यों करें? यदि कहें कि हो गयी तो श्रद्धालुकी बात छोड़ दें, किंतु जो अश्रद्धालु हैं, वे कहेंगे कि ये बड़े हैं—ऐसे हँसी होगी। यदि उनमें निर्णय करनेकी शक्ति है तो पूछे ही क्यों? और यदि निर्णय करनेकी शक्ति नहीं है तो पूछनेसे लाभ ही क्या है? यदि विश्वास है तो जो गीता, शास्त्र, महात्मा कहते हैं, वही मैं कहता हूँ। गीताकी बातको आप या मैं जो माने, उसे लाभ है। कोई भी काममें लाये। गीतामें जो बातें बतायी गयी हैं, वे ठीक हैं। भगवान्‌की बात ठीक है। उनपर विश्वास करो तो वैसा मानो, यदि मेरे वचनोंपर विश्वास है तो गीता जो बात कहती है, वही मानो।

आदमीको निराश नहीं होना चाहिये। सुधन्वाका अर्जुनके साथ युद्ध हुआ। बार-बार हिम्मत दिलाकर भगवान्‌ने अर्जुनसे युद्ध कराया। इस तरह हिम्मत रखे। हिम्मत दिलानेसे एक कायर भी शूरवीर हो जाता है। युद्धके समय चारण लोग बहुत हिम्मत दिलाते हैं। किसी भी

देवताको देख लो, पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी भाँति उसकी स्तुति गायी जाती है, जिससे देवताओंमें जोश आता है। गीतामें भी भगवान्ने अर्जुनके प्रति जितने विशेषण दिये— महाबाहो, सव्यसाचिन् आदि, उनसे एक कायर भी शूरवीर बन जाता है।

प्रश्न—पाप एकदम नष्ट होते हैं या धीरे-धीरे?

उत्तर—धीरे-धीरे नष्ट होनेका तो कानून है ही, पर एक साथ भी नष्ट हो जाते हैं। आदमीको बीमारी हो जाय तो आहिस्ते-आहिस्ते भी मरता है और कोई-कोई हार्ट-फेल होकर तत्काल भी मर जाता है। अभी भूकम्प आया और काफी लोग मर गये, प्रारब्ध था तभी तो मर गये। शरीरमें मरनेका कोई चिह्न नहीं था, तब भी मर गये और शनैः-शनैः बीमारीसे भी मरते हैं।

महापुरुषोंकी बातोंसे भी एकदम भ्रम मिट जाता है। ज्ञानके मार्गमें बात समझमें आ गयी तो काम बन गया। भक्तिके मार्गमें भाव बदला और तुरंत भगवान् मिल गये। एक कथा नारदजी तथा एक वटवृक्षके नीचे रहनेवाले एक भक्तकी आती है। भगवान् मुझे मिलेंगे यह जानकर वह मस्त होकर कीर्तन करने लगा। भगवान् तत्काल प्रकट हो गये। सात्त्विक वृत्तिमें एकदम ध्यान लग गया तो परमात्मा मिल गये। महात्माके सङ्गसे, शास्त्र तथा पुस्तकें पढ़नेसे एकदम भाव बदल सकता है। आपत्तिकालमें गजेन्द्रने भगवान्को पुकारा तो भगवान् आ गये।

प्रश्न—यह स्थिति कैसे पैदा हो?

उत्तर—सत्संग, भारी संकट, ईश्वरकी कृपा, पुस्तक पढ़ने, जप करने, ध्यान करनेसे यह स्थिति पैदा हो जाती है। जब-जब ऐसी वृत्ति हो तो जोरसे साधन करे। पिंगला वेश्याका दत्तात्रेयके सङ्गसे, अजामिलका भगवान्के नामसे झट काम बन गया। शास्त्रोंमें बहुत-से उदाहरण हैं।

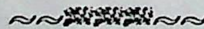
बेहोशीके पूर्व जिस बातकी स्मृति होगी, उसीकी स्मृति बेहोशीसे होशमें आनेके समय होगी। भगवान्की स्मृति बेहोशीके समयके पूर्वमें रहनेके कारण यदि बेहोशीमें ही मृत्यु हुई तो उसकी सद्गति होगी—

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥

(गीता ६। ४०)

हे प्यारे! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।

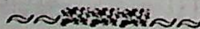
कोई भी आदमी अपनी आत्माके कल्याणके लिये कपट-जंजालको छोड़कर परमात्माका भजन करे, यह कल्याणकृत् है, उसका कभी पतन नहीं होता। यह भगवान्के भक्तकी बात है। निष्कामभावसे कर्म करे, उसका पतन नहीं होता, दुर्गति नहीं होती। वास्तवमें सच्ची नीयतसे भगवान्का भजन करे तो पतन नहीं होता—यह बड़े आश्वासनका श्लोक है। '**कल्याणकृत्**' के अन्तर्गत सब आ जाते हैं। '**पार्थ**' में आत्मीयता भरी है और '**तात**' में प्यार भरा हुआ है।



न यत्र गोविन्दकथामहानदी न यत्र नारायणपादसंश्रयः।
न यत्र विष्णोः सततं वचोऽस्ति न संवसेत् तक्षणमात्रं कथंचित्॥
यस्मिन् ग्रामे भागवतं न शास्त्रं न वर्तते भागवता रसज्ञाः।
यस्मिन् गृहे नास्ति गीतार्थसारः यस्मिन् ग्रामे नामसहस्रकं वा॥
तयो रसज्ञा यत्र न सन्ति तत्र न संवसेत् क्षणमात्रं कथंचित्।
यस्मिन् दिने दिव्यकथा च विष्णोर्न वास्ति जन्तोस्तस्य चायुर्वृथैव॥

(गरुडपुराण ३। २०। २८—३०)

'जहाँ भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित कथारूपी महानदी प्रवाहित नहीं होती, जहाँ नारायणके चरणाम्बुजोंका आश्रय नहीं है और जहाँ मुखसे भगवान् विष्णुका नाम-स्मरण नहीं होता, वहाँ किसी प्रकारसे क्षणमात्र भी नहीं रहना चाहिये। जिस ग्राममें भागवतशास्त्रकी चर्चा नहीं होती और न जहाँ भागवतके रसको जाननेवाले ही होते हैं, साथ ही जिस घरमें भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी गीताके अर्थोंका निष्कर्ष जाननेवाले नहीं हैं अथवा जिस ग्राममें भगवान्की सहस्रनामावली (विष्णुसहस्रनाम)-की चर्चा नहीं होती अथवा जहाँ उन दोनों (गीता और विष्णुसहस्रनाम)-के रसोंका ज्ञान रखनेवाले नहीं हैं, वहाँ क्षणमात्र भी किसी प्रकारसे नहीं रहना चाहिये अथवा मनुष्यके जीवनमें जिस दिन भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाका श्रवण नहीं होता है, उस दिन उस प्राणीकी आयु व्यर्थ हो जाती है।'



मानसका मानवीय विजय-स्यन्दन

(डॉ० श्रीनागेश्वरसिंहजी 'शशीन्द्र')

मानव-जीवनमें अनेकों विपत्तियाँ हैं, बाधाएँ हैं और यन्त्रणाएँ हैं। क्या उन सभीसे पार पानेके लिये मानसमें किसी ऐसे स्यन्दनका निर्देश है, जिसपर चढ़कर मनुष्य मुक्ति-पथपर अग्रसर हो सकता है? इसका बहुत अच्छा समाधान मानसमें श्रीराम एवं विभीषणके वार्ता-प्रसंगमें प्राप्त होता है। रावण मोह तथा भौतिक ऐश्वर्यका मूर्तिमान् प्रतीक है। उसका चित्र प्रस्तुत करते हुए श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

मोह दशमौलि, तद्भ्रात अहँकार,
पाकारिजित् काम विश्रामहारी।

रावण श्रीरामसे युद्ध करनेके लिये स्वर्णरथपर सवार होकर आ रहा है। नाना प्रकारके आयुधोंसे उसकी भुजाएँ भरी हैं। उसका अभेद्य कवच भी अनोखा ही बना है। इसके विपरीत उसके प्रतिपक्षी श्रीराम रथहीन हैं, हाथमें केवल धनुष-बाण लिये युद्धस्थलमें खड़े हैं। ऐसी विषम प्रतिद्वन्द्विताकी स्थितिमें सहृदय विभीषणका मन विचलित हो गया है। वह प्रेमवश श्रीरामके इस वीररूपको भूल गया—

त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः।
पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदाश्रितः॥
पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा।
रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः॥

प्रीति मोहका महत्त्वपूर्ण कारण होता है। गोस्वामीजीने उपर्युक्त युद्ध-प्रसंगमें ही लिखा है—

अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥

ऐसी विषम स्थितिमें विभीषणका मौन-भङ्ग हुआ। वह अधीर होकर विनीत वचन बोला—

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

इसके उत्तरमें—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥

—कहकर श्रीरामने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं उसी स्यन्दन—विजयरथपर यहाँ आया हूँ, जिससे हमारी विजय निश्चित होगी।

सदासे यह परम्परा चली आ रही है कि जब-जब भक्त मोह-पाशमें बँधा, तब-तब स्वयं प्रभुने उससे उसे उबारा। अर्जुनके मोहका निवारण भी श्रीभगवान्‌ने युद्धस्थलमें किया था और विभीषणके मोह-निवारणका अवसर भी उन्हें रणस्थलमें ही मिला था। अपने दिव्य रथके स्वरूपको प्रकट करते हुए श्रीरामने विभीषणसे कहा—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥

शौर्य और धैर्य—ये दोनों श्रीरामके रथके पहिये हैं, जो रावणके रथमें नहीं हैं। शौर्य तथा धैर्यके अभावमें कितना भी सुदृढ़ रथ क्यों न हो—उसपर आसीन व्यक्तिके विजयकी तो बात ही दूर है, वह शत्रुके समक्ष टिक भी नहीं सकता। यह मानव-जीवन भी रथाकार है। शौर्य और धैर्य—ये दोनों इस जीवनरूपी रथके दो पहिये हैं। जिसके जीवनरूपी रथमें शौर्य एवं धैर्यरूपी पहिये नहीं होंगे, उसका जीवन अस्थिर हो जायगा। इसके साथ ही श्रीरामके रथपर सत्य एवं शीलरूपी ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही हैं। दृढ़ सत्यके अभावमें मनुष्यका स्वयं एवं अन्यपरसे विश्वास उठ जाता है और उसके समस्त सहयोगी उसका साथ छोड़ देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सत्यका पालन करना मनुष्यके लिये आवश्यक है और सत्यके साथ-साथ जीवनमें शील-विनयका भी होना सोनेमें सुगन्ध है। शीलके अभावमें सत्य शिथिल पड़ जाता है, उसकी क्रियाशक्तिमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

रथके लिये घोड़े चाहिये। श्रीरामके रथमें—*'बल बिबेक दम परहित घोरे।'* हैं, जो *'छमा कृपा समता रजु जोरे॥'* 'क्षमा-कृपा-समता' आदिकी रस्सीसे जुड़े हुए हैं।

इसी प्रकार मानव-जीवनमें सभीको बल, विवेक, दम एवं परहितरूपी घोड़ोंकी आवश्यकता है, जो क्षमा-कृपा एवं समतारूपी डोरसे बँधे हों; क्योंकि रथके पहिये भी तो उन्हीं घोड़ोंके ही पीछे चलते हैं और घोड़ोंकी तीव्र या मन्दगतिके अनुसार उसीके बलपर

घूमते हैं। बल, विवेक, दम एवं परहितरूपी घोड़ोंकी शक्तिके आधारपर ही मानवका जीवन-रथ यथेष्ट गतिमान् है। चञ्चल मन मनुष्यको लक्ष्यकी ओरसे आगे-पीछे करता रहता है। बल एवं विवेकके अहम्के कारण यत्र-तत्र गिरनेका भय है। अतः बल एवं विवेकरूपी घोड़ोंको पीछे तथा दम एवं परहितरूपी घोड़ोंको आगे रखना ही हितकर है। गोस्वामीजीने मानसमें स्वयं श्रीरामके मुखसे कहलाया है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

मनुष्यको चाहिये कि परहितके लिये वह अपने बलका प्रयोग विवेकका अङ्कुश रखकर करे। इन घोड़ोंको क्षमा, कृपा एवं समतारूपी रज्जुओंसे बाँधकर सदा नियन्त्रणमें रखना चाहिये। यह तो रथका स्वरूप हुआ। आगे उसके सारथीके सम्बन्धमें कहा गया है—

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥

घोड़ोंपर पूर्णरूपेण नियन्त्रण करते हुए सावधानीपूर्वक रथको संचालितकर लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ते जाना सारथीका महत्त्वपूर्ण कार्य है। मानव-जीवनरूपी रथका सारथी है—ईश्वरका भजन—भगवन्नामका जप। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।'** इससे स्पष्ट है कि भजन स्वयं भगवत्स्वरूप है। भजन करते हुए कभी भी मनमें गर्व-तरु उत्पन्न न होने देना चाहिये। प्रायः गुण एवं शक्तिकी उपलब्धि होनेपर अहम्का प्रादुर्भाव हो जाता है। इसी अहम्के कारण देवर्षि नारद राजा शीलनिधिकी विश्वमोहिनी राजकुमारीके मोहमें फँसकर हास्यके पात्र हुए। इसलिये अहर्निश भगवद्भजन करना ही सर्वोपरि है और उसके साथ ही स्वपुरुषार्थको भगवान्में ही तिरोहित मानना चाहिये। जो विजयके अभिलाषी हैं, उन्हें निजी तैयारी भी करना आवश्यक है, वही तैयारी रथकी आत्मा है। जीवनमें काम, क्रोधादि षड्रिपुओंसे अपनी रक्षा तथा उसपर नियन्त्रण करनेके लिये युद्धास्त्र अपेक्षित होता है। अस्तु, विजयके आकांक्षीके पास रक्षा-हेतु वैराग्यरूपी ढाल तथा संरक्षण-हेतु संतोषरूपी कृपाणका होना अनिवार्य बतलाया गया है। इनके अतिरिक्त भी अपेक्षित हैं—

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥

ममतारूपी शत्रुके आनेपर संतोषरूपी कृपाण रखा ही रह जायगा। दानरूपी परशुसे भी उसका शिरश्छेद नहीं किया जा सकेगा। उसके लिये विशिष्ट ज्ञानरूपी कठिन धनुषसे अविवेक आदि शत्रु-सेनाको नष्ट किया जा सकेगा। शत्रुको पराजित करनेके लिये शम (मनका वशमें होना), यम (अहिंसा आदि) और शौचादि नियमरूपी बाण चाहिये, जो निर्मल और अचल मनरूपी तरकसमें भरे हों। मनुजीने कहा भी है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

काम, क्रोध आदि शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्र शरीरको क्षत-विक्षत न कर सकें—शरीर और मनपर कोई प्रभाव न डाल सकें, इसके लिये श्रेष्ठ महापुरुषों, संत-महात्माओंका साहचर्य आवश्यक है। इन्हीं प्रतिरक्षारूप सत्य, शील, क्षमा, शम, दम आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर निर्दिष्ट स्यन्दनपर आरूढ़ होकर जीवन और जगत्में विजय प्राप्त करना सम्भव है। इसके अभावमें इस अजेय संसार-रिपुको पराजित करना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है—

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥



अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां न बलं न तेजः॥

(गरुडपुराण १। ११५। ६७)

अर्थके लिये आतुर मनुष्यका न कोई मित्र है और न कोई बन्धु। कामातुर व्यक्तिके लिये न भय है और न लज्जा ही। चिन्तासे ग्रस्त प्राणीके लिये न सुख है और न नींद ही तथा भूखसे पीड़ित मनुष्यके शरीरमें न बल ही रहता है और न तेज ही रह जाता है।



वेणुगीत

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ०-सं० ६१९ से आगे]

जिनका जीवन आनन्दसे नाच उठता हो या जिनके जीवनसे मधुर संगीतकी ध्वनि निकलती हो वे ही वास्तवमें आनन्दमें डूबे हुए हैं। ऐसे कौन होते हैं? जो भक्त होते हैं वे ही ऐसे होते हैं। भगवान्‌के प्रति प्रेमको छोड़कर विषयासक्त पुरुष—चाहे वह कितना ही अधिक संसारके भोगोंको, विषयोंको प्राप्त कर ले, कितना ही वह अधिकार, पद, वैभव, ऐश्वर्य भोगनेवाला बन जाय, पर उसके जीवनसे संगीत नहीं निकलता है। उसके जीवनसे निरन्तर विषादकी और भयकी ध्वनि निकलती है।

'भयस्थानसहस्राणि शोकस्थानशतानि च' सहस्रों-सहस्रों भयके स्थान और सैकड़ों-सैकड़ों शोकके स्थान हैं। उन बड़े-बड़े ऊँचे वैभवशालियोंके, अधिकारियोंके, राजाओंके, सम्राटोंके, देवताओंके, विद्वानोंके—सबके जीवनमेंसे यह कराहनेकी ध्वनि निकलती है। संगीत नहीं निकलता है। दूसरोंको जलानेवालोंके राग-द्वेष उनके अंदरसे प्रकट होते हैं, जो स्वयं उनको जलाते रहते हैं। जब ऐसा मनुष्य विषयासक्तिसे छूटकर भगवान्‌के चरणोंमें आसक्ति कर पाता है और वह आसक्ति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तभी उसका जीवन संगीतमय, नृत्यमय होता है। श्रीगोपाङ्गनाओंने विचार किया कि सभी सिद्ध, मुनि नृत्य-गीतपरायण नहीं होते। योगी, ऋषि, ध्यानी, संन्यासी, मुनि—जितने भी साधक और सिद्ध होते हैं, सभी नृत्य-गीत आदिसे विरक्त होते हैं। इनको वे इन्द्रियोंके आकर्षक विषय मानते हैं और यह है भी सत्य। नृत्य-गीत अच्छी चीज होनेपर भी बड़ी मोहक है। यह इन्द्रियोंको और मनको खींचकर नीचे गिरानेवाली बन जाती है। इसीलिये जो ज्ञानके साधक और सिद्ध-महात्मा हैं, वे नृत्य-गीतका विरोध करते हैं। पहले साधक लोग अपने साधनकी सम्पन्नताके लिये और सिद्ध लोग अपने पूर्वाभ्यासको लेकर नृत्य-गीतका हमेशा विरोध करते हैं और उनका विरोध करना सार्थक है, उचित है। जो लोग अपनेको बचाना चाहते हैं, उनको भी नृत्य और संगीतसे बचना चाहिये। परंतु जो श्रीकृष्णप्रेमी लोग हैं, वे विषयोंसे तो विरक्त हो चुके रहते हैं। उनके नियमकी यह बात है कि विषयासक्त पुरुष भगवान्‌में आसक्त नहीं हो सकता। भगवान्‌की आसक्ति और विषयासक्ति दोनों साथ-साथ वैसे ही नहीं चल सकतीं जैसे रात्रि और सूर्य। अगर सूर्य है तो रात्रि नहीं है और रात्रि है तो सूर्य नहीं है। इसी प्रकार जहाँ भोगासक्ति है वहाँ भगवत्-रति नहीं है और जहाँ भगवान्‌में अनुरक्ति है वहाँ विषयासक्तिका नाम ही नहीं। इसलिये भक्तचूड़ामणि प्रेमी लोग तो विषयासक्त होते ही नहीं। उनकी यह आसक्ति बहुत पहले समाप्त हो जाती है, जबसे प्रेमका अङ्कुर पैदा होता है—

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावत् प्रेमसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

कहा है कि जबतक भोग और मोक्षकी पिशाचिनी इच्छा हृदयमें वर्तमान है, तबतक प्रेमके अङ्कुरका उदय नहीं होता। जब भगवत्प्रेमका अङ्कुरोद्गम होता है (अभी वह पल्लवित, पुष्पित, फलित नहीं हुआ केवल अङ्कुर है) तभी विषयासक्ति नष्ट हो जाती है। फिर उनका काम क्या रहता है? उन प्रेमियोंका काम है अपने प्रेमास्पद भगवान्‌को सुख पहुँचाना। उनको रस देना। यह विचित्रता है। प्रेम ही एक प्रकारका विलक्षण दिव्य रस है, जो रसमें भी रस-लालसा पैदा कर देता है। **'रसो वै सः'** रस भगवान् ही है और कोई नहीं। इस रसमें रस-पिपासा उत्पन्न कर देता है प्रेम। प्रेमरसका आस्वादन करनेवालेके लिये भगवान् स्वयं कहीं-कहीं प्रेमीको प्रेमास्पद बना लेते हैं और स्वयं प्रेमी बन जाते हैं। जिनमें श्रीकृष्ण-सुखकी लालसा है उनके जीवनका एकमात्र स्वभाव होता है, स्वरूप होता है—अपने प्रत्येक अङ्गसे, प्रत्येक शब्दसे, प्रत्येक कलासे, प्रत्येक भावसे केवल और केवल श्रीश्यामसुन्दर अपने प्रियतमको सुख पहुँचाना। इसके लिये वे स्वाभाविक, सहज, अभिमानशून्य, अहंकाररहित प्रयत्न करते रहते हैं। उनके जीवनमें जो कुछ होता है, वह श्रीकृष्णके सुखका साधन होता है। इसलिये वे जब श्रीकृष्णका दर्शन पाते हैं या उनके स्मरणादिजनित आनन्द-रसमें जब मत्त होते हैं, तब उनको सुखी करनेके लिये वे स्वयं उस रसमें आप्लावित हो जानेके कारण नृत्य-

गीत आदि करने लगते हैं।

इसलिये ये मयूर जो नाचने लगे, शुक-पिक जो गाने लगे—इनके इस संगीत-नृत्यादिको देखकर यह अनुमान होता है कि ये सब प्रेमी मुनि लोग हैं। अतः इनको यहाँ पक्षी न कहकर मुनि कहा जाय। शुकदेवजी स्वयं मुनि हैं और वे '**मुनि**' शब्दका प्रयोग करते हैं—यहाँके विहङ्गमोंके लिये। इससे मालूम पड़ता है कि यहाँके जो पक्षी हैं वे मुनिधर्मावलम्बी हैं। क्योंकि वे भगवान्‌के वेणुनादको सुनकर, यदि प्रेमी न होते तो प्रेमियोंके स्वभावके अनुकूल क्यों नाचने-गाने लगते? पर इसमें वे लोग भी कुछ थे जो ज्ञान-सम्पन्न थे। परंतु भगवान्‌का वेणुनाद और उनका स्वरूप-सौन्दर्य '**इत्थं भूतगुणो हरिः**' ऐसा आकर्षक है कि बड़े-बड़े अमलात्मा, विमलात्मा भी नाच उठते हैं। जो अबतक अपने-आपको नृत्य-गीतसे हटाकर मौनावस्थामें ध्यान करनेमें लगे रहते हैं, ऐसे पक्षीरूप मुनियोंके कानोंमें जब वह वंशी-ध्वनि गयी, भगवान्‌का अधरामृत वंशी-निनादके रूपमें होकर पहुँचा तो इनसे भी रहा न गया। भगवान्‌में ऐसे गुण हैं जो उन मुनियोंके चित्तोंको भी हर लिया तथा उनका ध्यान भंग हो गया और वे अपने-अपने स्थानोंको छोड़कर उड़े और तत्काल श्रीकृष्णके समीप आ बैठे।

वहाँ पहले ही सारी वृक्षावली हरी-भरी हो गयी थी; क्योंकि उनपर वेणुनादामृतका सिञ्चन हुआ था। ध्यानस्थ मुनिरूपी पक्षी वंशीनादामृतके सिञ्चनसे पल्लवित एवं सुरभित वृक्षोंपर आकर बैठे, ताकि पत्र-पुष्पादिकी आड़से श्रीकृष्णको भलीभाँति देख सकें और श्रीकृष्णकी दृष्टि भी उधर आये। इस तरह बीच-बीचमें जगह देखकर पल्लवादि-समन्वित शाखाओंपर वे बैठे। वहाँ उन लोगोंको पत्र-पुष्पादिविहीन कोई वृक्ष दिखायी नहीं दिया। उन्होंने सोचा कि भगवान्‌का दर्शन करनेको एकान्त-मन चाहिये और दूसरा देखनेवाला भी वहाँ न रहे। अगर वहाँ सूखे पेड़ होते भी तो वहाँ बैठनेपर सभी लोग देखते, जिससे देखनेका एकान्त नहीं मिलता; क्योंकि भगवान्‌को देखनेवालेका मन एकान्त होना चाहिये, भगवान्‌को देखनेवालेका स्थान एकान्त होना चाहिये तथा उसकी बुद्धि और क्रिया एकान्त होनी चाहिये। जहाँ भीड़-भाड़ रहती है—बुद्धिमें, मनमें, स्थानमें, क्रियामें भीड़ रहती है या मनमें बहुत-से संकल्प आ गये, मनमें भीड़ हो गयी, बुद्धि बहुत शाखावाली हो गयी तो वहाँ भगवान्‌का दर्शन दुर्लभ है—

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

(गीता २।४१)

अव्यवसायी बुद्धि जो भगवान्‌में निश्चयात्मिका होकर नहीं लग गयी, वह बुद्धि बहुत शाखावाली होती है। इसलिये बुद्धि एकान्त हो, शरीर एकान्त हो, मन एकान्त हो, विचार एकान्त हो, क्रिया भी एकान्त हो—इन सबकी साधकको जरूरत है। भगवान्‌को किसीको देखना हो तो वह बाहरी और भीतरी दोनों भीड़-भाड़का साथ छोड़ दे। वह कभी-कभी मोहसे समझ लेता है कि सामूहिक काम करना है। साधना सामूहिक नहीं हुआ करती है। यह नियम है। इसलिये हमारे यहाँ गुरु-परम्परा अलग-अलग है और गुरु-परम्परामें मन्त्र एक-से नहीं हैं। कौन-सा अधिकारी किस मन्त्रका साधन कर सकता है, इसका विचार किया जाता है। उग्र देवता भी हैं और सौम्य देवता भी। इसलिये अधिकार-भेदसे ही कार्य होता है। यह राजदरबार नहीं है कि सब तरहके लोग आकर बैठें। साधना एकान्तकी वस्तु है।

यहाँ साधनाका संकेत है; क्योंकि ये मुनि जो ठहरे। पहले ध्यान, साधना कर चुके हैं। एकान्तवास कर चुके हैं, इनको अभ्यास है। आज ये मुनि पक्षी बने हुए हैं तो क्या हुआ? इन्होंने सोचा कि अलग बैठकर देखना-सुनना ही ठीक। दूसरे न देख पायें इसलिये जहाँपर, जिन वृक्षोंपर घने पत्र-पुष्पादि थे, जहाँ उनकी आँख सिर्फ एक ही चीज देख सके, वहाँ वे जाकर बैठे। एक बात उनके मनमें और आयी, वह यह कि वंशीनाद सुनकर गायें पत्थरकी मूर्ति-सी बन गयीं और विमानोंपर दूर-दूरतक आकाशमें विराजित देववधुएँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं; इसलिये निश्चित ही वंशीमें ही कोई जादू है और कहीं नहीं। हम भी अपनेको ऐसे भूल जायँ और गिरने लगें तो पत्तोंका घेरा हमें बचा लेगा। इसलिये पतनकी आशंकासे भी वे वहाँ एकान्तमें घने-घने पत्तोंके बीच अपनेको छिपाकर बैठे। जैसे मुनि घासकी कुटिया बनाते हैं—तृण-पर्णादिसे आच्छादित करके, वैसे ही उन्होंने भी तृण-पल्लवादिसे आच्छादित कुटियाकी भाँति वृक्षोंकी शाखाओंपर अपना स्थान निश्चित किया और श्रीकृष्णके वंशीनादके श्रवणसे वे परमानन्दमें निमग्न हो गये। सुननेमें

उनका मुनिपनका अभ्यास था ही और दूसरे जो वेणुकी ध्वनि यहाँपर आ रही थी वह और भी अंदरके ध्यानको मिटा देनेवाली थी। उसी ध्वनिमें उनका मन रम गया। उन्होंने स्वाभाविक ही आँखोंको पूरा खुला नहीं रखा। अर्धनिमीलित नेत्रमुखसे श्रीकृष्णके वेणुनादको सुनने लगे और उसीके भावावेशमें वे अपने-आपको भूल गये। देह और देहीके सारे विषयोंको भूलकर उनका मन ऐसा रमा कि उनके लिये जगत्‌में वंशी-निनादके सिवाय कुछ रहा ही नहीं। केवल वंशी-निनाद रह गया। आकाशमें, व्योममें, पातालमें, पृथ्वीपर—हर जगह वंशी-निनाद छा गया। एक तो उनका मन उदास, दूसरा नयनोंको मूँदे रखना, तीसरा मौन और स्थिर भावसे वहाँ बैठना—ये सब-के-सब मुनि-धर्मके आचरण हैं पक्षियोंके। इससे मालूम पड़ता है कि वृन्दावनके सारे पक्षी प्रायः मुनि-धर्मावलम्बी ही हैं।

तीन प्रकारके मुनि पाये गये हैं—१-ज्ञानी, २-योगी, ३-प्रेमी। जो ब्रह्म-मनन-शील हैं वे 'ज्ञानी' मुनि हैं, जो अन्तर्यामी पुरुष—परमात्माका ध्यान करते हैं वे 'योगी' मुनि हैं तथा जो भगवत्-मनन-शील हैं, जो भगवान्‌के रूप-गुण-सौन्दर्य-माधुर्यका निरन्तर मनन करते हैं वे 'प्रेमी' मुनि हैं। ये तीनों प्रकारके मुनि किसी भिन्न परमात्माका मनन करते हों, ऐसी बात नहीं है। परमात्मा, भगवान् और ब्रह्म एक ही चीज हैं—'**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते**'। ऐसा भागवतमें आया है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन शब्दोंद्वारा भजन होता है भगवान्‌का। ज्ञानी लोग ब्रह्मके रूपमें, योगी लोग परमात्माके रूपमें और प्रेमी लोग भगवान्‌के रूपमें भगवान्‌का भजन करते हैं। यहाँ जो मुनि थे, वे तीसरे प्रकारके भगवत्-मनन-शील मुनि थे।

न यह देह है और न यह ब्रह्मवृक्ष है, अपितु ब्रह्मवृक्षकी जिस शाखापर बैठनेसे सच्चिदानन्दघन-विग्रह, मङ्गलमय-विग्रह, चिदानन्दमूर्ति भगवत्-स्वरूपके दर्शन होते हैं, उनकी लीलाके दर्शन होते हैं, उनकी कृपादृष्टि अपने ऊपर पड़ती है; वे भगवत्प्रेमी उसी शाखाका आश्रय ग्रहण करते हैं। वेदकी विभिन्न शाखाएँ हैं। वेद-कल्पकी जिस शाखाको ग्रहण करनेसे सच्चिदानन्दविग्रह प्रेमस्वरूप श्रीभगवान्‌के विचित्र सौन्दर्य-माधुर्यके दर्शन होते हैं और उनकी मधुर-मनोहर लीलाओंकी स्फूर्ति होती है, लीलाएँ सामने प्रकट होती हैं और उनकी कृपा-दृष्टिका लाभ होता है; वे प्रेमी मुनि उसी शाखाका बड़े आग्रहके साथ समाश्रयण करते हैं और उसी शाखाके वे विचित्र पल्लव, अङ्कुर आदि जो स्थानीय भक्तिके अङ्ग हैं, उन्हीं अङ्गोंकी उस कर्मावलीको और उस कायाको जीवनका सार समझकर उसका अवलम्बन करते हैं। दूसरे भी सभी अच्छे हैं, किसीसे विरोध नहीं। तुलसीदासजीने राम-नामके सम्बन्धमें कहा है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥

औरोंके लिये सब ठीक है—

करम उपासन, ग्यान बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावनके अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो॥

इस प्रकारसे किसीके साथ विरोध करने नहीं जाते। वे भगवत्प्रेमी उन ज्ञानी पक्षियोंसे, ज्ञानी मुनियोंसे, योगियोंसे लड़ते नहीं। ज्ञानी मुनि और योगी मुनि अपनी-अपनी डालोंपर अपनी-अपनी शाखाओंपर बैठकर अपने-अपने विधानके अनुसार मङ्गलमय भगवान्‌का स्मरण-चिन्तन-आराधन करते हैं।

आचार्य मधुसूदन सरस्वती पहले तो इस प्रकारके थे—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

पर जब श्रीकृष्णके द्वारा उनका मानस सदाके लिये चुरा लिया गया तो इनकी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त हो उठी—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति॥

उन्होंने कहा—जो ब्रह्मका ध्यान करे तो बहुत अच्छा, जो ज्योति-दर्शन करना चाहे तो करे, कोई विरोध नहीं। पर मुझे तो यह यमुनाजीके तटपर जो नीला-नीला तेज फुदकता रहता है, उसीको पाना है। (क्रमशः)

[प्रेषक—श्रीबृजदेवजी दुबे]

प्रभु-विश्वास

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ)

प्रभु-विश्वासी साधकोंके जीवनकी अनोखी घटनाएँ बहुधा पढ़ने-सुनने और देखनेको मिलती हैं, फिर भी साधकोंके बीच प्राय: ऐसा प्रश्न उठा करता है कि 'जब प्रभु-विश्वास मीरा, सूर, तुलसीको प्रभुसे अभिन्न करा सकता है तो हमारे विश्वासमें वह कौन-सी कमी है, जिसके कारण प्रभु हमारी नहीं सुनते?' आजका पढ़ा-लिखा और तार्किक बुद्धिवाला व्यक्ति तो इससे भी आगे छलाँग लगा जाता है, वह कहता है कि 'प्रभु-विश्वास तो किसी विरले ही व्यक्तिको मिलता है और उसकी आवश्यकता भी क्या है? आजके युगमें तो वे लोग अधिक मज़ेमें हैं, जो प्रभु-विश्वासके स्थानपर अर्थ (पैसा)-को अधिक महत्त्व देते हैं, फिर कोरे प्रभु-विश्वाससे तो आजतक जगत्का काम बनते देखा नहीं गया है।' इस प्रकार आज प्रभु-विश्वासका मज़ाक़ उड़ानेवाले अधिक और दृढ़तासे प्रभु-विश्वासको पकड़कर चलनेवाले—साधक बहुत कम होते जा रहे हैं।

हम प्रभु-विश्वासको स्वीकार करें या न करें, किंतु यह अकाट्य सत्य है कि संसारका प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी वस्तु या व्यक्तिका विश्वास अवश्य ही करता है। आजतक ऐसा कोई व्यक्ति देखनेमें नहीं आया, जो संसारमें किसीपर विश्वास न करता हो। कोई धनपर विश्वास करता है तो कोई वस्तुओंपर, कोई माँ-बापपर विश्वास करता है तो कोई इष्ट-मित्रोंपर। ईश्वर-विश्वासी साधक ईश्वरपर ही विश्वास करता है। 'विश्वास' एक तत्त्व है, जो सभीको मिला है और जिसे सभी व्यक्ति कहीं-न-कहीं अवश्य लगा रहे हैं। उसे कोई जगत्में लगा रहा है तो कोई जगत्पतिमें।

संतोंका कथन है—'विश्वासका सदुपयोग परमात्माको स्वीकार करनेमें और ज्ञानका सदुपयोग संसारसे विमुख होनेमें है।' मूल बात है सदुपयोग और दुरुपयोगकी। अग्निको न अच्छा कह सकते हैं और न बुरा, क्योंकि यदि अग्निका सदुपयोग किया जाय तो उससे जीवनयापनके लिये आवश्यक अनेक प्रकारके पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं, किंतु यदि उसीका दुरुपयोग किया जाय तो उससे दूसरोंके घरोंमें आग लगा सकते हैं। यही सदुपयोग और दुरुपयोगकी बात संसारकी समस्त वस्तुओं, घटनाओं, परिस्थितियों आदिके साथ भी लागू हो सकती है।

प्रश्न हो सकता है कि फिर विश्वासका सदुपयोग परमात्माको स्वीकार करनेमें ही क्यों है? इसका उत्तर यह है कि प्रभु-विश्वासके अतिरिक्त अन्य सभी विश्वास कुछ क्षणोंमें समाप्त हो जानेवाले हैं। जिन व्यक्तियोंने 'व्यक्ति'का विश्वास किया, वह व्यक्ति कुछ समयके पश्चात् बिछुड़ गया। जिन व्यक्तियोंने 'परिस्थिति'का विश्वास किया, कुछ समय पश्चात् वह परिस्थिति ही बदल गयी। जो धनका विश्वास करते हैं, वे कुछ समयके पश्चात् देखते हैं कि धनवान् निर्धन और निर्धन धनवान् हो गया। ये सारे चित्र निज-ज्ञानके प्रकाशमें सभी व्यक्ति देख सकते हैं। इसीलिये संतोंने कहा है कि 'प्रभु-विश्वास ही एकमात्र ऐसा विश्वास है, जो निरन्तर दृढ़से दृढ़तर होकर फलदायी होता है और अन्ततः जीवनके समस्त अभावोंको मिटा डालता है।' जिन साधकोंका ईश्वर-विश्वास सजीव हो जाता है, उनके जीवनसे अन्य सभी विश्वासोंका अन्त हो जाता है और वे कृतकृत्य हो जाते हैं। ऐसे साधकोंका योगक्षेम स्वयं प्रभुके हाथोंमें रहता है। सभी ईश्वर-विश्वासी साधकोंका यह अनुभव है।

प्रभु-विश्वासमें सजीवता लानेका उपाय है—सर्वप्रथम किसी भी नाते प्रभुको अपना स्वीकार कर लेना। अनेक साधक आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते अर्थात् प्रभुपर पूर्ण विश्वास नहीं करते। अन्य सम्बन्धों, व्यक्तियों, वस्तुओंमें विश्वास रहनेके कारण उनके प्रभु-विश्वासमें सजीवता नहीं आ पाती। मीराका प्रभु-विश्वास देखिये—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।

मीराने अन्य सारे विश्वास छोड़ दिये और यही कारण था कि भगवान्ने मीराको अपने श्रीविग्रहमें स्थान दिया। यह ईश्वर-विश्वासकी महिमा है।

प्रभु-विश्वासी साधकोंके विषयमें एक बड़ी आलोचना यह भी की जाती है कि ऐसे साधक अकर्मण्य, उत्साहहीन, आलसी एवं निठल्ले होते हैं, इस प्रकार वे संसारके लिये किसी कामके नहीं रह जाते, परंतु वास्तविकता यह है कि ईश्वर-विश्वासी साधक प्रभुको अपना माननेके साथ-साथ प्रभुकी सृष्टिको भी अपने प्यारेकी वस्तु मानकर उससे प्यार करने लगता है। उसके सारे सम्बन्ध एवं व्यवहार प्रभुके नातेसे ही होते हैं। सत्य तो यह है कि इस सृष्टिका सदुपयोग सच्चा प्रभु-विश्वासी ही करता है। उसके जीवनका एक-एक क्षण उत्तमोत्तम कार्योंमें व्यतीत होता है। साधारण व्यक्ति सृष्टिका उपभोग करते हैं और प्रभु-विश्वासी साधक अमित उल्लाससे प्रभुके सृष्टिकी निष्काम सेवा करता है। प्रभु-विश्वासी ही ममता, कामनाका वास्तविक त्याग करनेमें समर्थ हो पाता है। आत्मख्याति और लोक-रञ्जनकी भावना उसके जीवनसे सदाके लिये निकल जाती है और वह प्रभुके शरणागत होकर जीवनकी दुर्गम-से-दुर्गम घाटियोंको सहज ही पार कर जाता है। ऐसा साधक अपने 'विश्वासके तत्त्व'का सदुपयोग एकमात्र अपने प्रभुके लिये, 'ज्ञान'का सदुपयोग जीवन्मुक्तिके लिये और प्राप्त वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्यका सदुपयोग जगत्‌की सेवा करनेके लिये करता है। वस्तुत: सच्चा ईश्वर-विश्वासी ही जगत्‌के लिये सबसे अधिक उपयोगी होता है।

सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, गोविन्दसिंह, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद—ये सभी ईश्वर-विश्वासी थे। इनके द्वारा जगत्‌का जितना कल्याण हुआ है, उतना सामान्य व्यक्तियोंद्वारा नहीं हुआ। सच्चा ईश्वर-विश्वासी इस जगत्‌के लिये सदा उपयोगी रहा है और रहेगा। अत: भौतिकताकी चकाचौंधमें फँसकर प्रभु-विश्वासको खण्डित नहीं होने देना चाहिये और यदि इसका प्रत्यक्ष अनुभव करना है तो प्रभु-विश्वासको सजीव बनाना चाहिये। जिन व्यक्तियोंने प्रभुकी अलौकिक, अनन्त, अद्वितीय महिमाको स्वीकार कर उनसे आत्मीय सम्बन्ध जोड़ लिया है, उनका लौकिक जीवन तो सार्थक हुआ ही है, साथ-ही-साथ वे प्रभुकी अहैतुकी कृपासे परम दिव्य प्रेमको पाकर कृतकृत्य भी हो गये हैं।



भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण करें

जो भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है, वह नित्य परम शान्तिको प्राप्त होता है। अशान्ति या चित्तकी चञ्चलता तभीतक रहती है, जबतक चित्तमें जन्म-मृत्युमय जगत्‌के अनन्त अनित्य दृश्य भरे रहते हैं। जब चित्त भगवान्‌के चिन्तनमें घुल-मिल जाता है, तब वह नित्य शान्तिमय भगवान्‌का निवासस्थल बन जाता है। सागरके ऊपर-ऊपर ही तरंगें उछलती हैं, उसका अन्तस्तल अत्यन्त गम्भीर और शान्त होता है। इसी प्रकार चित्त जबतक बाहरी जगत्‌में रमता है, तबतक उसकी चञ्चलता नहीं मिटती, पर वही जब अनन्त अथाह गहराईमें जाकर भगवान्‌को पा जाता है, तब सर्वथा शान्त-स्थितिमें पहुँच जाता है।

जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया, वह आनन्दका दिव्य और अटूट भण्डार बन गया। उसके भीतर नित्य आनन्दका समुद्र लहराता रहता है और वह जगत्‌के अनेकानेक त्रितापतप्त प्राणियोंको दिव्य शान्तिमयी आनन्द-सुधाधारामें बहाकर उनके तापको सदाके लिये मिटा देता है। उसका अस्तित्वमात्र ही जगत्‌के कल्याणमें बहुत बड़ा सहायक बनता है, चाहे वह कुछ करे या न करे। उसके सम्पर्कमें आनेवाले महापातकी लोगोंका जीवन भी पलट जाता है। वे घोर नरकसे निकलकर दिव्य भगवद्धाममें पहुँच जाते हैं, तरण-तारण बन जाते हैं।

जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, उसके लिये पृथ्वीपर ही भगवान्‌का दिव्य धाम उतर आता है। वह नित्य भगवद्धाममें ही सोता-जागता, चलता-फिरता, खाता-पीता और सारी क्रियाएँ करता है। वह कभी भगवान्‌से अलग नहीं होता और भगवान् कभी उससे अलग नहीं होते। उसके भीतर-बाहर सर्वत्र सदा भगवान् ही भरे रहते हैं।

साधकोंके प्रति—

अभेद और अभिन्नता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मानवमात्रका कल्याण करनेके लिये तीन योग हैं— कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। यद्यपि तीनों ही योग कल्याण करनेवाले हैं, तथापि इनमें एक सूक्ष्म भेद है कि कर्मयोग तथा ज्ञानयोग—दोनों साधन हैं और भक्तियोग साध्य है। भक्तियोग सब योगोंका अन्तिम फल है। कर्मयोग तथा ज्ञानयोग—दोनों लौकिक निष्ठाएँ हैं, पर भक्तियोग अलौकिक निष्ठा है। शरीर और शरीरी—दोनों हमारे जाननेमें आते हैं, इसलिये ये दोनों ही लौकिक हैं। परंतु परमात्मा हमारे जाननेमें नहीं आते, प्रत्युत केवल माननेमें आते हैं, इसलिये वे अलौकिक हैं। शरीरको लेकर कर्मयोग, शरीरीको लेकर ज्ञानयोग और परमात्माको लेकर भक्तियोग चलता है। कर्मयोग भौतिक साधना है, ज्ञानयोग आध्यात्मिक साधना है और भक्तियोग आस्तिक साधना है।

गीताने कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंको समकक्ष बताया है—**'लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा'** (३। ३)। कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंसे एक ही तत्त्वकी प्राप्ति होती है— **'एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्'** (गीता ५। ४), **'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते'** (गीता ५। ५)। साधक चाहे कर्मयोगसे चले, चाहे ज्ञानयोगसे चले, दोनोंका एक ही फल होता है।

कर्मोंसे मनुष्य क्रिया और पदार्थमें फँसता है, पर कर्मयोग इन दोनोंसे ऊँचा उठाता है। इसलिये कल्याण करनेकी शक्ति कर्ममें नहीं है, प्रत्युत कर्मयोगमें है; क्योंकि कर्मोंमें योग ही कुशलता है—**'योगः कर्मसु कौशलम्'** (गीता २। ५०)। साधारण मनुष्य कर्म करते ही रहते हैं और कर्मोंका फल भी भोगते ही रहते हैं अर्थात् जन्मते-मरते रहते हैं। कर्म करनेसे उनका कल्याण नहीं होता। परंतु कर्मयोगसे कल्याण हो जाता है। कर्मयोगमें निःस्वार्थ-भावसे सेवा करनेपर संसारका त्याग हो जाता है। सांख्ययोगमें साधक सबको छोड़कर अपने स्वरूपमें स्थित होता है। कर्मयोगमें करनेकी मुख्यता है और सांख्ययोगमें विवेक-विचारकी मुख्यता है। इस प्रकार कर्मयोग और सांख्ययोगमें बड़ा फ़र्क़ है। फ़र्क़ होते हुए भी दोनोंका फल एक ही है। दोनोंके द्वारा संसारसे ऊँचा उठनेपर मुक्ति हो जाती है। ये दोनों लौकिक साधन हैं; क्योंकि शरीर (जड़) और शरीरी (चेतन)—ये दोनों विभाग हमारे देखनेमें आते हैं, पर भगवान् देखनेमें नहीं आते। भगवान्‌को मानें या न मानें, यह हमारी मरजी है। इसमें विचार नहीं चलता। भगवान् हैं—ऐसा मानना ही पड़ता है। फिर वह माना हुआ नहीं रहता, उसका अनुभव हो जाता है।

'कर्म' में परिश्रम है और 'कर्मयोग' में विश्राम है। परिश्रम पशुओंके लिये है और विश्राम मनुष्यके लिये है। शरीरकी जरूरत परिश्रममें ही है। विश्राममें शरीरकी जरूरत है ही नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि शरीर हमारे लिये है ही नहीं। कर्मयोगमें शरीरके द्वारा होनेवाला परिश्रम दूसरोंकी सेवाके लिये है और विश्राम अपने लिये है।

कर्मयोग तथा सांख्ययोगसे 'अभेद' होता है और भक्तियोगसे 'अभिन्नता' होती है। जहाँ-जहाँ ज्ञानका वर्णन है, वहाँ-वहाँ सत् और असत्, प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, क्षर और अक्षर आदि दोका वर्णन है; जैसे— **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६)। परंतु भक्तियोगमें दोका वर्णन नहीं है, प्रत्युत एक भगवान्‌के सिवाय कुछ भी नहीं है— **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। ज्ञानयोगमें सत् अलग है और असत् अलग है, पर भक्तियोगमें सत् भी भगवान् हैं और असत् भी भगवान् हैं— **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९। १९)। अभेदकी अपेक्षा अभिन्नतामें एक विलक्षणता है। अभिन्नतामें कभी भेद होता है, कभी अभेद होता है। इसलिये अभिन्नतामें प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम होता है। कर्मयोग और सांख्ययोगके द्वारा जो अभेद होता है, उसका आनन्द प्रतिक्षण वर्धमान नहीं है। जैसे दूध उबलता है तो दूधमें उथल-पुथल होती है, ऐसे ही उथल-पुथलवाला जो आनन्द है, वह भक्तिका है और जो शान्त, एकरस आनन्द है, वह ज्ञानका है।

भक्तियोगकी अभिन्नतामें दो बातें होती हैं—जब भक्त अपनेको देखता है, तब वह भगवान्‌को अपना मालिक देखता है कि मैं भगवान्‌का दास हूँ और जब वह भगवान्‌को देखता

है, तब वह अपनेको भूल जाता है कि केवल भगवान् ही हैं; भगवान्‌के सिवाय कुछ है ही नहीं, हुआ ही नहीं, हो सकता ही नहीं। इस प्रकार भेद और अभेद दोनों होते रहते हैं, जिससे प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। गोस्वामीजी महाराजने लिखा है—

माई री! मोहि कोउ न समुझावै।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम-लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उरको, बिधि जो भयो बिपरीता॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान, सुनहु सखि! अरुझि परी यहि लेखे॥

(गीतावली, अयोध्या० ५३। १—३)

कौशल्या माताको राम, लक्ष्मण और सीता—तीनों अपने सामने दीखते हैं तो वे सुमित्रासे पूछती हैं कि यह बताओ, अगर रामजी वनको चले गये हैं तो वे मेरेको दीखते क्यों हैं? और अगर वे वनको नहीं गये हैं तो मेरे चित्तमें व्याकुलता क्यों है? कौशल्याजीकी ये दो अवस्थाएँ हैं। इन दोनों अवस्थाओंमें प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है।

भक्तिकी अभिन्नतामें अपनी तरफ देखते हैं तो भेद होता है कि मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। भगवान्‌की तरफ देखते हैं तो अभेद होता है कि एक भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। यह अभेद भक्तिमें ही है, ज्ञानयोगमें नहीं। भक्तिकी अभिन्नतामें भक्त भगवान्‌से भिन्न कभी होता ही नहीं। वह न संयोग (मिलन)-में भिन्न होता है, न वियोग (विरह)-में भिन्न होता है। ज्ञानमें अपने स्वरूपका ज्ञान होता है, जो परमात्माका अंश है—'ममैवांशो जीवलोके' (गीता १५। ७)।

ज्ञानयोगमें साधकको एक तत्त्वसे अभेदका अनुभव हो जाता है। परंतु जिसके भीतर भक्तिके संस्कार होते हैं, उसको ज्ञानके अभेदमें संतोष नहीं होता। अत: उसको भक्तिकी प्राप्ति होती है। भक्तिमें फिर भेद और अभेद होते रहते हैं, जिसको अभिन्नता कहते हैं। परंतु ज्ञानयोगमें केवल अभेद होता है। ज्ञानयोगमें परमात्माका अंश अपने स्वरूपमें स्थित हो गया, अब उसमें भेद कैसे हो? उसमें अखण्ड आनन्द, अपार आनन्द, असीम आनन्द, एक आनन्द-ही-आनन्द रहता है, परंतु भक्तियोगमें अभिन्नता होती है। दोसे एक होते हैं तो अभेद होता है और एकसे दो होते हैं तो अभिन्नता होती है। अभेदमें जीवकी ब्रह्मके साथ एकता हो जाती है। एकरूपसे जो ब्रह्म है, वही अनेकरूपसे जीव है। अभिन्नतामें ईश्वरके साथ एकता होती है। अंश-अंशकी एकता अभेद है और अंश-अंशीकी एकता अभिन्नता है। अंश-अंशीकी एकतामें प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम होता है। प्रतिक्षण वर्धमान प्रेममें विरह होनेपर भक्त मिलनकी इच्छा करता है और मिलन होनेपर चुप, शान्त हो जाता है! इस अवस्थाका वर्णन श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार किया गया है—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

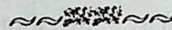
(११। १४। २४)

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीलाका वर्णन करती-करती गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओंको याद करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारंबार रोता रहता है, कभी हँसने लग जाता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है तो कभी नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त सारे संसारको पवित्र कर देता है।'

वेदान्तमें ऐसी मान्यता है कि अभेदके बाद कुछ भी बाकी नहीं रहता। अगर अभेदके बाद ईश्वरसे अभिन्नता मानें तो वेदान्तके अद्वैत सिद्धान्तमें कमी आती है। अपने सिद्धान्तमें कमी न आ जाय, इसलिये वेदान्तियोंने ईश्वरको कल्पित बता दिया; क्योंकि कल्पित बतानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं। परंतु ईश्वर किसकी कल्पना है—इसका उत्तर उनके पास नहीं है। वे द्वैतसे डरते हैं कि कहीं अपनेमें द्वैत न आ जाय। वास्तवमें सत्ता एक ही (अद्वैत) है; परंतु अपने रागके कारण दूसरी सत्ता (द्वैत) दीखती है। दूसरी सत्ताका तात्पर्य संसारसे है, ईश्वरसे नहीं; क्योंकि संसार 'पर' है और ईश्वर 'स्व' (स्वकीय) है। दूसरी सत्ताका निषेध करनेके लिये वेदान्तने ईश्वरको भी कल्पित मान लिया! राग तो अपना है, पर मान लिया ईश्वरको कल्पित! अपना राग मिटाये बिना दूसरी सत्ता कैसे मिटेगी? इसलिये ईश्वरको

कल्पित न मानकर अपना राग मिटाना चाहिये। ईश्वर कल्पित नहीं है, प्रत्युत अलौकिक है।*

जीव सब एक हो जायँ तो (जीवभाव मिटनेपर) 'ब्रह्म' होता है। जो ऐश्वर्यसे युक्त है और सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, प्रलय आदिको जानता है, वह 'भगवान्' है। ये बातें जीवमें नहीं होतीं। इसलिये सब जीव एक होनेपर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय नहीं होता— 'जगद्व्यापारवर्जम्' (ब्रह्मसूत्र ४।४।१७)। कारण कि जीव ब्रह्मके साथ एक हो सकता है, भगवान्‌के साथ नहीं। भगवान्‌के साथ उसका अभेद नहीं हो सकता, पर अभिन्नता हो सकती है। श्रीएकनाथजी महाराजने श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्धकी टीकामें इसी अभिन्नताको अभेदभक्ति कहा है।



तंबाकू तथा पान-मसाला-सेवनसे जीवन जोखिममें होनेकी सम्भावना

क्या आप जानते हैं कि तंबाकू तथा पान-मसालेका सेवन आपके लिये न केवल हानिकारक है; अपितु जानलेवा भी है? इन्हें मुँहमें डालकर चबाते समय इस बातपर आप अवश्य ध्यान दें कि मामूली-से स्वादके चक्करमें कहीं ये आपके लिये जानलेवा न बन जायँ। इनका सेवन किसी भी उम्रके व्यक्तिके लिये खतरनाक है। हालहीमें धर्मशिला कैंसर-अस्पतालके निर्देशक तथा प्रमुख शल्य-चिकित्सकने जानकारी दी कि कॉलेजमें पढ़नेवाले बीससे चौबीस वर्षकी आयुके चार नवयुवकोंकी जीभ इसी कारण काटनी पड़ी। इन चारोंमें तंबाकू, पान-मसालेके सेवनकी भयंकर लत पड़ गयी थी। उन्होंने यह भी बताया कि जब ये चारों स्कूलमें पढ़ते थे, तभीसे इन्हें इन जानलेवा पदार्थोंके सेवनकी लत पड़ गयी थी। कॉलेजतक जाते-जाते इसी बुरी लतके कारण उनकी जीभपर कैंसर हो गया। यह कैंसर आगे और भयंकर रूप न ले सके, इसलिये उनकी जीभोंकी शल्य-क्रिया करके एक भागको काट कर अलग कर दिया गया।

यद्यपि पान-मसालोंके सेवनके खतरोंके प्रति चिकित्सा-जगत्‌ने तो समय-समयपर लोगोंको सावधान किया ही है, परंतु तब भी नवयुवकों तथा किशोर-वर्गमें इन वस्तुओंके सेवनके प्रति रुचिमें कोई विशेष कमी नहीं आयी है। पूरी दुनियामें इनके कारण मुँहका कैंसर होनेकी घटनाओंमें तेजीसे वृद्धि होती जा रही है। हालहीमें प्राप्त आँकड़ोंके अनुसार पूरे विश्वमें मुँहका कैंसर होनेकी घटना सर्वाधिक ब्राजीलमें हो रही है। त्रासदीपूर्ण ढंगसे भारतका इस क्षेत्रमें दूसरा स्थान है। इसके अतिरिक्त भारतमें जिन लोगोंको कैंसर हो रहा है, उनमेंसे १८—२० प्रतिशतको मुँह तथा गलेका कैंसर ही होता है। इनके प्रमुख कारण हैं—तंबाकू चबाना और पान-मसालोंका अत्यधिक सेवन करना तथा सिगरेट एवं शराब पीनेकी बुरी आदत। उल्लेखनीय है कि ब्राजीलमें कैंसरका प्रमुख कारण अत्यधिक शराब पीना ही है। इस परिप्रेक्ष्यमें टाटा इंस्टीट्यूटने एक सर्वेक्षण भी किया, जिसके अन्तर्गत लगभग तीन लाख लोगोंकी जाँच की गयी। इस अनुसंधान-अध्ययनके अनुसार तंबाकू तथा सुपारी चबानेसे मुँह तथा गलेका कैंसर होनेकी भयंकर आशंका बन जाती है।

कैंसरका प्रमुख लक्षण यह है कि प्रारम्भमें जीभपर सफेद दाग या छाले पड़ जाते हैं। फिर धीरे-धीरे ज़बान कठोर हो जाती है। अन्ततः मुँह खोलनेमें भी कठिनाई होने लगती है। इस दृष्टिकोणसे किशोरावस्थासे ही सचेत होनेकी आवश्यकता है; क्योंकि इसी आयुसे लोग इस तरहकी बुरी आदतोंके शिकार होते हैं। अतः कैंसर होनेसे पहले ही सावधानी बरतते हुए तंबाकू, पान-मसाला, सिगरेट तथा शराब आदिके सेवनसे परहेज करना ही सर्वाधिक उचित उपाय है। इसके अतिरिक्त कैंसरसे बचावके लिये मौसमी सब्जियों तथा ताजे फलोंका सेवन करना चाहिये और खाद्य पदार्थोंमें सादगीके साथ-साथ विटामिन 'सी'की यथोचित मात्रा भी लेनी चाहिये। उल्लेखनीय है कि सर्वाधिक विटामिन 'सी' आँवलेमें होता है। इसके अतिरिक्त नींबू, संतरे तथा मौसम्मी आदिमें भी यह उपलब्ध है। —डॉ० श्रीशुभंकरजी बनर्जी



* द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ (गीता १५।१६-१७)

'इस संसारमें क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी)—ये दो प्रकारके ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।' 'उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'—इस नामसे कहा गया है। वही अविनाशी ईश्वर तीनों लोकोंमें प्रविष्ट होकर सबका भरण-पोषण करता है।'

नाम-साधना

(श्रीजयकान्तजी झा)

संसार-सागरसे पार होनेके लिये श्रीहरिनामसे बढ़कर और कोई भी सरल साधन नहीं है। मङ्गलमय भगवन्नामसे लोक-परलोकके सारे अभावोंकी पूर्ति तथा दु:खोंका नाश हो सकता है। अतएव सांसारिक दु:ख-सुख, हानि-लाभ, अपमान-मान, अभाव-भाव, विपत्ति-सम्पत्ति—सभी अवस्थाओंमें प्रतिक्षण भगवान्‌का नाम लेते रहना चाहिये। ऐसा विश्वास रखना चाहिये कि 'नाम' साक्षात् भगवान् ही हैं। नामका जप, कीर्तन और स्मरण सबसे बढ़कर भजन है। नाम-जप करनेवालोंको बुरे आचरण और बुरे भावोंसे सर्वथा बचना चाहिये। उसे झूठ-कपट, धोखा-विश्वासघात, छल-चोरी, निर्दयता-हिंसा, द्वेष-क्रोध, ईर्ष्या-मत्सरता तथा दूषित आचार आदि दोषोंसे सदैव दूर रहना चाहिये। एक बातका विशेषरूपसे ध्यान रहे कि भजनका बाहरी स्वाँग बनाकर इन्द्रिय-तृप्ति अथवा स्वार्थ-साधनकी ओर प्रवृत्ति न होने पाये। नामसे निश्चय ही महान् पापोंका नाश हो जाता है, परंतु यही सोचकर नामको पाप करनेमें सहायक कदापि नहीं बनाना चाहिये।

नाम जपते-जपते ऐसी भावना करनी चाहिये कि प्रत्येक नामके साथ भगवान्‌के दिव्य गुण—अहिंसा, सत्य, दया, प्रेम, सरलता, साधुता, परोपकार, सहृदयता, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, शौच, श्रद्धा, विश्वास आदि मेरे अंदर उतर रहे हैं। मेरा जीवन इन दैवी गुणोंसे तथा भगवान्‌के प्रेमसे ओत-प्रोत हो रहा है। अहा! नामके उच्चारणके साथ ही मेरे इष्टदेव प्रभुका ध्यान हो रहा है, उनके मधुर-मनोहर स्वरूपके दर्शन हो रहे हैं तथा उनकी सौन्दर्य-माधुरी एवं त्रिभुवनपावनी ललित लीलाओंकी झाँकी हो रही है। मेरे मन-बुद्धि-अहङ्कारादि उनमें तदाकारताको प्राप्त हो रहे हैं।

मन न लगे तो नाम-भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये—'हे नाम-भगवन्! तुम दया करो, तुम्हीं मेरे साक्षात् प्रभु हो; अपने दिव्य प्रकाशसे मेरे अन्त:करणके अन्धकारका नाश कर दो, मेरे मनके सारे मलोंको जला दो। तुम सदा मेरी जिह्वापर नाचते रहो और नित्य-निरन्तर मेरे मनमें विहार करते रहो। तुम्हारे जीभपर आते ही मैं प्रेम-सागरमें डूब जाऊँ और सारे जगत्‌को, जगत्‌के सारे बन्धनोंको, तन-मनको, लोक-परलोकको तथा स्वर्ग-मोक्षको भूलकर केवल प्रभु-प्रेममें निमग्न हो रहूँ। लाखों जिह्वाओंसे तुम्हारा उच्चारण करूँ, लाखों-करोड़ों कानोंसे मधुर नाम-ध्वनि सुनूँ और करोड़ों-अरबों मनोंसे तुम्हारे दिव्य नामामृतका पान करूँ। तृप्त होऊँ ही नहीं, पीता ही रहूँ—नाम-सुधाको और उसीमें समाया रहूँ।'

मनकी चञ्चलताके समय जिह्वा और ओठोंको चलाकर नामका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उसे सुननेका प्रयत्न कीजिये। तन्द्रा आती हो तो आँख खोलकर वाणीसे स्पष्ट जप कीजिये। मनकी चञ्चलताका नाश करनेके लिये इन्द्रिय-संयम अत्यन्त आवश्यक है और उसके लिये स्पष्ट उच्चारण करते हुए वाचिक जप करना चाहिये। वाचिक जपसे मन-इन्द्रियोंकी चञ्चलताका शमन होता है, तत्पश्चात् उपांशु-जपके द्वारा नामके रस-माधुरीकी ओर चित्तकी गति की जाती है एवं तदनन्तर मानसिक जपके द्वारा मधुर नाम-रसका पान किया जाता है।

भगवान्‌के सभी नाम एक-से हैं—सबमें समान शक्ति है, सभी पूर्ण हैं; तथापि जिस नाममें अपनी रुचि हो, जिसमें मन लगता हो और सद्‌गुरु अथवा संतने जिस नामका उपदेश किया हो, उसीका जप करना उत्तम है। दो-तीन नामोंका (जैसे—राम, कृष्ण, हरि) जप एक ही भावनासे एक साथ भी चले तो भी कोई हानि नहीं है। हम संसारका मामूली-सा धन चाहते हैं, किंतु नाम-जप एक ऐसा धन है, जिससे स्वयं भगवान् ही अपने हो जाते हैं। भक्तोंकी गाथाएँ उच्च स्वरसे इस सत्यकी घोषणा कर रही हैं। नाम-जपका अभ्यास करनेपर तो ऐसी आदत पड़ जाती है कि फिर नाम-जपका छूटना कठिन ही हो जाता है। फिर तो साधककी ऐसी प्रबल इच्छा होने लगती है कि सदा-सर्वदा नाम-जप ही किया करूँ।

भगवन्नाममें सर्वार्थ-साधनकी क्षमता निहित है। श्रद्धा, भक्ति और ऐकान्तिक निष्ठाके साथ नाम-जप करते-करते क्षमताका विकास होता है। भोजन करते समय जैसे मनुष्यका ध्यान रहता है—व्यञ्जनकी ओर, स्वादकी ओर, परंतु प्रत्येक ग्रासके साथ-ही-साथ क्षुधानाश, देह और

इन्द्रियोंकी शक्ति-वृद्धि तथा स्वादका सुख अपने-आप मिलता जाता है, उसी प्रकार नाम-जपके समय चित्त तो संलग्न रहता है— नाम-नामीके अभिन्न-स्वरूप मन्त्रमें, किंतु प्रति बारके नामोच्चारणके साथ-ही-साथ अलक्षित रूपमें अनित्य विषय-भोगोंसे वैराग्य, नित्य सत्य— सच्चिदानन्दस्वरूप मन्त्रात्मा भगवान्‌में प्रेमभक्ति एवं सर्वार्थसिद्धिमयी भगवदनुभूति और तज्जनित अतीन्द्रिय सुखका हृदयके भीतर विकास होता रहता है। भोजनके फलस्वरूप ग्रास-ग्रासमें पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति इत्यादिके सम्पन्न होते रहनेपर भी जैसे वे प्रति ग्रासमें दिखायी नहीं देते— अनेक ग्रासोंका फल संचित होनेपर ही पता चलता है; उसी प्रकार नाम-जपके फलको भी प्रति बारके नामोच्चारणके साथ-साथ साधक समझनेमें समर्थ नहीं होता, दीर्घकालके निरन्तर साधनसे अन्तःकरणमें संचित आध्यात्मिक सम्पत्ति अपनी ज्योतिसे ऊपरी मलको दग्ध करके बुद्धि और हृदयके सम्मुख जब प्रकाशित होती है, तभी इसका अनुभव होता है। बुद्धि और हृदय जब स्वच्छ हो जाते हैं, तभी नामके भीतर निहित अचिन्त्य भाव-सम्पत्तिका प्रति बारके नाम-स्मरणमात्रमें आस्वाद प्राप्त होने लगता है।

शास्त्रोंमें नामके प्रति अक्षरबुद्धि रखना महान् अपराध माना गया है। नाम प्राणवान् और आध्यात्मिक तेजका आधार होता है। साधक जितना ही दिन-पर-दिन, क्षण-पर-क्षण नामकी सेवा करता है, उतना ही नामका माहात्म्य साधकके विशोधित अन्तःकरणमें प्रकाशित होता है एवं नाम-निहित शक्ति साधकके अंदर ज्ञान-भाव-रसादि ऐश्वर्य स्वयं प्रकट करके उसे कृतार्थ कर देती है। साधकको सर्वाङ्गीण कल्याणतक पहुँचानेके लिये जिस-जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, वे सभी वस्तुएँ नाम-साधनासे सुलभ हो जाती हैं। शास्त्रीय विचारके द्वारा नाम-तत्त्वको हृदयङ्गम करके उसकी अचिन्त्य शक्तिमें अविचल विश्वास रखना आवश्यक होता है। ऐसी धारणा बनाये रखनी चाहिये कि नाम और नामी— दोनों एकमूर्ति हैं। वे चिन्मय देह धारण करके अपनी कृपासे हमारे हृदयमें विराजमान हैं। अतः सर्वदा सतर्क, अप्रमत्त और भक्तिपूतचित्त होकर उनकी सेवामें सम्पूर्ण शक्तियोंको लगाना ही हमारा कर्तव्य है। नित्य-निरन्तर प्रेमके साथ नामका स्मरण-चिन्तन एवं निदिध्यासन ही हमारा अभीष्ट होना चाहिये। यही नाम-साधना है। इसीसे सर्वार्थसिद्धि होती है।

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः।'

नामके उच्चारण या स्मरणमात्रसे नामीका स्वरूप चित्तपटपर उदित होता है। अतः नामका अर्थ है— नामी। नामीके स्वरूपके साथ जितना घनिष्ठ परिचय संस्थापित होता है, नामका अर्थ उतना ही स्पष्ट होता जाता है। नामके प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक मात्राके अर्थकी एवं समष्टिरूपसे नामके शाब्दिक अर्थकी शब्द-शास्त्र और युक्तिकी सहायतासे बुद्धिद्वारा पर्यालोचना करनेपर भी नामके वास्तविक अर्थका ज्ञान नहीं होता। किसी एक नये मनुष्यसे भेंट होनेपर, उसके सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके आकार-संनिवेश और गतिविधियोंका विशेषरूपसे निरीक्षण करनेपर अथवा बाहरसे उसकी कितनी ही बातें सुनकर या कार्योंको देखकर अथवा उसकी वंशावलीका परिचय जानकर भी उस मनुष्यको यथार्थरूपसे जाना या पहचाना नहीं जाता। परंतु मनुष्यके साथ नाना प्रकारकी अवस्थाओंमें बार-बार संग करते-करते उसके कार्यकलाप, वार्तालाप, हाव-भाव इत्यादिके भीतरसे उसके अन्तर्जीवनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें जितना घनिष्ठ परिचय प्राप्त होता है, मनुष्यकी चिन्तनधारा, भावधारा, कर्मधारा, ज्ञान-विज्ञान, शक्ति-सामर्थ्य और सुख-दुःख इत्यादिके साथ जितना योग संस्थापित होता है, उतना ही उसको पहचाना जाता है, समझा जाता है और उसके साथ एक सम्बन्ध प्रतिष्ठित होता जाता है। इसी प्रकार नाम-देहके अङ्ग-प्रत्यङ्गके संनिवेशको सूक्ष्म-दृष्टिसे खोजनेपर भी इसके सम्बन्धमें कोई वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता और तत्त्वतः नामका अर्थ अज्ञात ही रहता है। नामके वास्तविक अर्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करनेके लिये नित्य-निरन्तर विचारशील चित्तसे नामकी सेवा करना आवश्यक है। श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रताके साथ विचारपूर्वक नामका संग और सेवा करते-करते नाम-रूपमें अवतीर्ण भगवान्‌का स्मरण, चिन्तन और कीर्तन करते-करते देह, मन और बुद्धि जितनी निर्मल, विक्षेपरहित एवं प्रेमरससिक्त होगी, उतना ही नामके स्वरूपके साथ

साधकका परिचय होगा, उतना ही नाम और नामीके बीचका प्राकृतिक व्यवधान तिरोहित होगा; नामके भीतर भगवान्‌का प्रकाश भी उतना ही समुज्ज्वल होगा और विश्वगुरु भगवान् अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यके साथ नामके भीतरसे अपनेको प्रकट करके साधकको कृतार्थ कर देंगे और तभी नामका सम्यक् अर्थ जाना जायगा। नामके अर्थको समझ लेना अथवा नामी—भगवान्‌के स्वरूपकी उपलब्धि कर लेना एक ही बात है। भगवान्‌को पहचानना ही नामको पहचानना है, भगवान्‌के साथ परिचय होना ही नामके साथ परिचय होना है। सुदृढ़ विश्वास और अनुरागके साथ नाम-साधन करते-करते जितनी ही नामकी अर्थोपलब्धि होगी अर्थात् नामके साथ परिचय होगा, उतना ही नामका प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक मात्रा चिन्मय जान पड़ेगी एवं नाम-स्मरणमात्रसे चित्त भगवान्‌में समाहित हो जायगा। अतः साधकको आरम्भसे ही 'नाम'को चिन्मय, अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न और भगवान्‌के साथ स्वरूपतः अभिन्न मानकर उसपर दृढ़ विश्वास बनाये रखना चाहिये।

निरन्तरका नाम-जप ही प्रकृष्ट साधन है। खाते, सोते, बात करते, रास्ता चलते, काम करते—सर्वदा सभी अवस्थाओंमें नाम-स्मरणकी चेष्टा बनी रहनेपर शीघ्रातिशीघ्र उन्नति होती चली जाती है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके साथ नाम-जप करना ही श्रेयस्कर है। ऐसा विश्वास रखना चाहिये कि श्वास लेनेके साथ-साथ अचिन्त्य शक्ति-समन्वित नाम भी शरीर, इन्द्रिय और मनके प्रत्येक रन्ध्रमें प्रवेश कर जाता है एवं सम्पूर्ण सत्ताको भगवद्भावित और भगवद्भक्ति-रससे प्लावित कर देता है। नाम-जप इस प्रकार करना आवश्यक है कि जिसमें किसी विशेष आयोजन या प्रयत्नकी आवश्यकता न पड़े—अपने अनजानमें भी मन स्वभावसे ही नाम-जपमें लगा रहे। नामकी शक्तिसे मनका धर्म बदल जाता है—नित्य-निरन्तर भगवद्भावाविष्ट होकर रहना ही उसका स्वभाव बन जाता है। शरीर यदि अपवित्र हो, इन्द्रियाँ चञ्चल रहें, मन कुत्सित चिन्तामें डूबा हो तो भी नामको नहीं छोड़ना चाहिये। नामको किसी प्रकार अपवित्र और इसके माहात्म्यको किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। नाम नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त, महाशक्तिका आधार है। सभी अवस्थाओंमें नामका संग करते-करते नाम ही देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धिमें पवित्रता, स्थिरता और आत्मनिष्ठाका सम्पादन करके अपने स्वरूपको प्रकाशित करेगा। नित्य-निरन्तर नाम-साधनका अभ्यास करनेसे और किसी साधनका प्रयोजन नहीं रह जाता, किसी शक्ति या प्रक्रियाकी सहायता लेनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

भगवन्नामका किसी भी दूसरे काममें प्रयोग नहीं करना चाहिये। भगवन्नाम लेना चाहिये केवल भगवान्‌के लिये, उनके प्रेमके लिये। स्थिति ऐसी हो जाय कि नाम लिये बिना रहा न जाय; भजन हुए बिना मनको एक क्षण भी चैन न पड़े। जैसे श्वास रुकते ही गला घुटने लग जाता है—प्राण अत्यन्त व्याकुल होकर छटपटाने लगते हैं, उसी प्रकार भजनमें जरा-सी भी भूल होनेसे—क्षणभर भी नाम-जप छूटनेसे प्राण छटपटाने लगें। सच्चे नाम-जपकर्ताका मन परमात्मामें—उनके नामके स्मरण-चिन्तनमें रम जाता है और वह तृप्त, पूर्णकाम तथा अकाम हो जाता है। ऐसे ही भक्तोंके लिये भगवान्‌ने श्रीमद्भागवत (११। १४। १४)-में कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

अर्थात् 'जिसने अपना चित्त मुझमें अर्पित कर दिया है, वह मुझे छोड़कर ब्रह्माजीका पद, स्वर्गका राज्य, समस्त भूमण्डलका चक्रवर्तित्व, पातालादि देशोंका आधिपत्य, अणिमादि योगसिद्धियाँ तथा मोक्ष कुछ भी नहीं चाहता।'

इस प्रकार ऐकान्तिक निष्ठा और अनुरागके साथ नाम-साधनपथपर आरूढ़ रहनेसे प्राणका कार्य अपने-आप नियमित हो जाता है; चित्त नामानन्दके आकर्षणसे विषय-विमुख होकर भगवत्स्वरूपमें स्थित होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है एवं साधकको क्रमशः भगवान्‌की निश्चला-निष्काम भक्ति प्राप्त हो जाती है। अतः ऐसे सुगम एवं सर्वश्रेष्ठ साधनके द्वारा हमें अपने जीवनको कृतार्थ कर ही लेना चाहिये।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६३५ से आगे]

पाप है—बार-बार नियम, विचार तथा साधन-परिवर्तन।

याकौ फल होयगौ यह कि असंतोष, अविश्वास, नास्तिकताकी बृद्धि, महच्चरित्रनमें आलोचना, पतनोन्मुखी वृत्ति, विषयनमें रुचि, गुप्त कार्य तथा अन्तःकरणमें बेचैनी।

पुण्य है—आत्मनिरीक्षण।

याकौ फल होयगौ यह कि स्वदोष-दर्शन, विकार-असहन, उनके निष्कासनमें कटिबद्धता, श्रीजीवनधनके सांनिध्य कौ अनुभव तथा प्रेमालाप।

पाप है—सर्वथा वैपरीत्य।

अपने अहंकार कौ भाव, विधि-पथ, मन्त्र, नाम, ध्यान, ग्रन्थ तथा इष्टमें अनन्यताके स्थान पै अन्यता तथा असूयाकी बृद्धि।

याकौ फल होयगौ यह कि पाप-वहन, भयंकर अपराध, चिन्ता, द्वेष, स्वभावमें चिरचिरापन, बात-बातमें क्रोध, महदवज्ञा, गुप्त भाव सौं विषय-सेवन, इन्द्रिय-लोलुपताकी वृत्ति एवं अधःपतन। यदि श्री नाम कौ शुद्ध तथा स्पष्ट उच्चारण होय और साथ ही श्रवणन सौं श्रवण होय, मनमें आह्लाद होय, तौ लय तथा विक्षेप आप ही समाप्त है जायँ हैं। इनकूँ अवसर ही नहीं मिलै है, भजनमें गड़बड़ी करिवे कौ। फिर यदि शक्ति लगायकैं भजन होय, तौ याकौ प्रभाव हृदय पै परै है। जो साधक कूँ बहुत ऊँचौ चढ़ाय देय है। जब साधक ऊपर उठै, तब कषाय तथा रसास्वादन-दोष नष्ट है जायँ हैं।

आज साधु-समाजमें हू छल, कपट, विरोध बढ़ि गयौ है, विलासिता हू बहुत बढ़ि गयी है, स्वार्थ हू बढ़ि गयौ है। अपने कूँ इनसौं बहुत ही बचानौं है। सादा जीवन ही जीवे कौ अभ्यास बनानौं हैं। अपनेमें स्वार्थकी गन्ध हू न रहै। बाहर-भीतर पूर्ण साधुता ही भरनी है।

कल्पनात्मक वस्तु—जो वहाँ जायकैं करनौं है, वाकूँ अबही सौं करि चलैं। वर्तमानकालकी क्रिया, जैसें—स्मरण, चिन्तन, सेवा मनके द्वारा। यासौं मृत्यु भई न कि पहुँचे लीलामें।

चिन्तन करनौं कि यौं करूँगौ, यौं करूँगौ, यह करूँगौ, वह करूँगौ, ऐसौ होयगौ, वैसौ होयगौ—यह है भविष्यकालकी क्रिया, ऐसी कामना बनै।

परम माङ्गलिक दिवस। याकौ पूर्ण सदुपयोग।

कृपा तौ पूर्ण है ही। अब आवश्यकता है याके सँभारिवे की।

सर्वप्रथम लक्ष्य दृढ़ बनै। लक्ष्य दृढ़ बनिवे सौं जो कछु साधन कियौ जाय है, वह सब लक्ष्यमें ही लगै है। अन्यथा प्रपञ्च ठाढ़ौ है जाय है।

प्रेम—प्रेम केवल और केवल इनमें ही (प्रभुमें)। जो कछु करै केवल प्रेमके ताँईं ही करै। त्याग, वैराग्य, साधन, सम्बन्ध केवल प्रेमके ताँईं ही करै। प्रेममें परमावश्यक है—स्वभाव अति उत्तम, अति सरल, अति विनम्र होय, कठोरता छू न जाय।

रहनी अति उत्तम—साधु बनै, तौ पूर्ण साधुता निभावै, पूर्ण वैराग्य मनमें भर्‍यौ ही रहै। निरन्तर अपने-आपकूँ उठातौ ही रहै।

उत्थान का वस्तु है? श्रीभगवान्‌की ओर झुकाव सतत बढ़तौ ही रहै, यह है उत्थान और याके विपरीत संसारकी ओर झुकाव हो तौ जानौ ही है—पतन।

श्रीसद्गुरु-भगवान्। श्रीब्रजधाम। श्रीगिरिराजजी। श्रीब्रज-रज। श्रीभागवतजी और श्रीरामायणजी तथा श्रीठाकुरजीमें उत्तरोत्तर आत्मीयता बढ़ती ही जानी चहिए। तब ही लाभ।

मन अति पवित्र बनै। चिन्तन बढ़ै। कल्पना बढ़ै।

मनके द्वारा निरन्तर वाही लोकमें निवास करतौ रहै। मन अति सूक्ष्म है। मनके द्वारा जो होय है, अति सूक्ष्म ही

होय है। ऊँचे शास्त्र, ऊँचे संत, सबनने मन पै बहुत ही जोर दियौ है। मन सौं रहनौं ही साँचौ रहनौं मान्यौ गयौ है और मन सौं करनौं ही साँचौ करनौं मान्यौ गयौ है।

यदि मोह होय तौ केवल श्रीभगवान्में और श्रीभगवत्-भजनमें ही। भजन करोगे तौ भोग्य तौ आवैगौ ही। वासौं कैसें हूँ अपने कूँ बचाय लेय। बड़े-बड़े प्रलोभन आमिंगे। धनिक लोग आमिंगे, प्रार्थना करिंगे कि श्रीभगवन्! यदि आपकी रोटी कौ प्रबन्ध यहीं है जाय तौ आप निश्चिन्त है कैं भजन करि लैयँगे। यदि आपके ताँईं एक कुटिया बनि जाय तौ आपकूँ बड़ी सुविधा रहैगी। या प्रकारकी अनेकन बात आमिंगी। देखिवेमें तौ सुविधा-सी प्रतीत होय है, परंतु है महाबाधक। काऊ एकके हाथ बँधि जानौं पतन कौ कारण है, जो कदापि उचित नायँ। समस्त शास्त्र, संत और आचार्यनने आज्ञा करी है कि साधु कूँ तौ भिक्षान्न सौं ही निर्वाह करनौं चहिए। मान, प्रतिष्ठा और पूजा सौं सदाँ सावधान रहनौं चहिए।

श्रीकृष्णमें प्रेम—याहीके ताँईं साधन, भजन, चिन्तन, नियम, संयम अर्थात् जीवन ही याहीके ताँईं।

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

मनकी चञ्चलता मिटायवे कौ उपाय—मनकी चञ्चलता बढ़ै है राग-द्वेष सौं। राग-द्वेष होय है कामना सौं। अतएव कामना कूँ ही मिटानौं है। इतर कामना मिटै है केवल श्रीभगवत्-कामना सौं। कामना नष्ट भई न कि राग-द्वेष मिटे। राग-द्वेष मिटे न कि मन शान्त, स्थिर, सुस्थिर भयौ।

यदि याही जीवन में भगवत्प्राप्ति करनी है तौ,

यदि याही जन्म कूँ अन्तिम जन्म बनानौ है तौ,

—इन चार बातन कौं पालन करनौं ही परैगौ।

श्रद्धा, पवित्रतम जीवन, श्रीसद्गुरु-प्रदत्त साधन, कामनान कौ पूर्ण अभाव और पाँचवीं वस्तु है प्रेम। सो तौ इन चार्यौंनके फलस्वरूप स्वतः ही प्राप्त होयगौ। इन चार्यौंन कूँ हम ठीक पालन करि रहे हैं, याकी पहँचान है कि हमारौ स्वभाव उत्तरोत्तर अति सरल बनतौ ही जाय रह्यौ है। स्वभावमें सरलता आयी तौ ठीक। नहीं तौ कछु ठीक नहीं। रज, तम छू न जाय। सतत सत्त्वकी ही बृद्धि होती रहनी चहिए।

मन-संयम—मन कौ विषय अति गहन है। यामें एक बड़ी भारी कठिनता है कि यह हठीलौ है। अतएव याके निग्रह करिवेमें बड़े-बड़े योगी हू अधीर है जायँ हैं। वास्तवमें यह हठी है, दुर्जय है, अति प्रबल है, धोखेबाज है, अकर्मण्य-प्रिय है, विषयलोलुप है, एक प्रकार सौं यह विश्व-विजेता है। ये सब बातें तथ्य एवं सत्य हैं। तथापि श्रीप्राणनाथने श्रीगीताजीमें याके निग्रह करिवेके ताँईं दो निर्देश किये हैं—अभ्यास और वैराग्य।

पहली बात है अभ्यास—जब मन इत-उतमें भागै, तब याकूँ लौटाय-लौटाय कैं साधनमें अथवा साध्यके सांनिध्यमें बैठावै। बार-बार यही करतौ रहै। यही अभ्यास है। या उपाय सौं मन सधिवे लगै है। भागिवौ कम होतौ जाय है। धीरे-धीरे भागिवेमें यह संकोच करिवे लगै है।

दूसरी बात है वैराग्य—जब-जब मन श्रीभगवान्के अतिरिक्त अन्य संसारी संकल्प, विचार, कामना बनावै, तब-ही-तब याकूँ इनकी असारता दिखाय-दिखाय कैं इनसौं घृणा और उपेक्षा ही करामतौ रहै। इनकूँ मनमें टिकन ही न देय, यही वैराग्य है।

इन दोऊ युक्तिन सौं मन शान्त होयवे लगै है। स्वच्छ होयवे लगै है। एक बातकी बहुत ही आवश्यकता है कि यह विचार ही न उठन पावै कि यह वशमें है ही नहीं सकै। सदैव यह विश्वास राखै कि मेरौ मन वशमें है कैं ही रहैगौ। समय चाहें भले ही कितनौं हू लगि जाय, किंतु मनकी हठ मिटाय ही दैनीं है। याकूँ मैं श्रीसद्गुरु-आश्रयके बल सौं निश्चय ही अपने कहेके अनुसार ही चलायकैं रहुँगौ। श्रीमहदाश्रयके बल सौं कोई कार्य असाध्य है ही नहीं। हाँ, कष्टसाध्य अवश्य है। जो कार्य कष्टसाध्य जानि परै, वा कार्यमें बड़े वेग सौं, बड़ी सतर्कता सौं, प्रमाद-रहित हैकैं लगै, तौ वही कष्टसाध्य कार्य अति सुगम, अति सरल सौ प्रतीत हैवे लगैगौ। **(क्रमशः)**

ईश तथा केन आदि एकादश उपनिषदोंका संक्षिप्त परिचय

(श्रीनाथूरामजी गुप्त)

[गताङ्क पृ०-सं० ६३३ से आगे]

माण्डूक्योपनिषद्‌में 'ओऽम्' की व्यापकताका विशेषरूपसे प्रतिपादन हुआ है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परमात्माका शरीर है, इसके कण-कणमें परमात्मा विद्यमान है, उसीसे नाना आकार-प्रकारवाली सृष्टिकी रचना हुई है अर्थात् यह परमपिता ही विश्व-शरीरका शरीरी है—शरीरी तथा शरीर एक ही है। इसके अनन्तर इस उपनिषद्‌में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्थाका विवेचन है—इन अवस्थाओंमें जीवकी क्या स्थिति होती है, इसका बड़ा ही मार्मिक विवेचन है। यह उपनिषद् आकारमें सबसे लघु मात्र बारह मन्त्रोंका है, किंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—

सर्वꣳह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥

(माण्डूक्य० २)

अर्थात् यह सब ब्रह्म है, यह आत्मा (परमात्मा) जो जगत्‌में व्याप्त है—ब्रह्म ही है। वह यह आत्मा (परमात्मा) जो चार पादों (चार अवस्थाओं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्था)-में रहनेवाला है, उसीकी व्याख्या इस उपनिषद्‌में की गयी है।

ऐतरेयोपनिषद् साध्वी इतराके पुत्र महीदास ऐतरेय ऋषिद्वारा उपदिष्ट है। माता इतराके नामपर ही 'ऐतरेय' यह नाम इनका प्रसिद्ध हुआ। इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, मनुष्य-शरीर तथा इन्द्रिय-गोलकोंके यथावत् रहते हुए भी किस शक्तिके निकल जानेसे ये सब निष्क्रिय हो जाते हैं—इसका बड़ा ही तथ्यपूर्ण विवेचन है। पुत्र पिताका ही स्वरूप है, उसके कर्तव्योंका विवेचन तथा आत्मशक्तिका विवेचन बड़े ही मार्मिक रूपसे ऋषिद्वारा इस उपनिषद्‌में प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषद्-क्रममें इसके उपरान्त तैत्तिरीयोपनिषद् आता है। यह उपनिषद् तीन भागों (—शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली)-में विभक्त हैं। प्रथम वल्लीमें शिक्षाका विशद विवेचन तथा इसका जीवनके लिये महत्त्व प्रतिपादित करते हुए इस वल्लीके नवम अनुवाकमें ऋषि कहते हैं—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। ·······सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः॥

सत्य ज्ञानका स्वाध्यायकर उसका व्याख्यान करें। सत्यका अनुशीलनकर उसका प्रवचन-व्याख्यान करें। तपका ज्ञान प्राप्तकर उसका प्रवचन करें। जितेन्द्रियता प्राप्तकर उसका प्रवचन करें। यज्ञादि कर्मों, अतिथि-सत्कार आदिका ज्ञान प्राप्तकर उसका प्रवचन करें अर्थात् प्राप्त ज्ञानको जन-सामान्यतक पहुँचाये। वह स्वाध्यायप्रवचन ही तप है—यही तप है, परम तप है तथा सर्वोत्तम कर्म है। यही औपनिषदिक ऋषिका मत है। आचार्य इस वल्लीके एकादश अनुवाकमें कहते हैं—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः······सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्॥

अर्थात् सत्य बोलो, धर्मका आचरण करो। स्वाध्यायमें, सत्याचरणमें, धर्ममें, शुभ कर्मोंमें, सर्वभूतों (जीवों)-पर दया करनेमें, उन्नतिके साधनोंमें, स्वाध्याय-तप और उसके प्रसारमें, देव-पितृ-यज्ञ-अग्निहोत्रादि कर्मोंमें—कभी भी आलस्य अथवा प्रमाद न करना, सदैव इनको करनेमें मनुष्यको तत्पर रहना चाहिये। यही इस शीक्षावल्लीमें ऋषिका आदेश है, उपदेश है।

इसका दूसरा भाग ब्रह्मानन्दवल्लीके नामसे विख्यात है। इसमें परमात्माकी निकटता, साक्षात्कार, उसकी अनुभूति तथा पञ्चकोषों आदिका बड़ा ही सुबोध भावमें विवेचन है, इसके चतुर्थ अनुवाकमें ऋषि कहते हैं—

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य॥

भाव यह है कि वाणी तथा मन जहाँ न पहुँचकर लौट आते हैं, उस आनन्दको प्राप्त हुआ भक्त मरणादिसे पूर्णतया अभय हो जाता है। इस स्थूल तथा मनोमय शरीरमें रहनेवाला वही जीव (आत्मा) है।

अन्तमें आनन्दको परिभाषित करते हुए इस वल्लीको समाप्त किया है।

अन्तिम वल्ली भृगुवल्लीके नामसे है। इसमें ब्रह्म क्या है, इसकी प्राप्तिमें क्या-क्या साधन बनाये जा सकते हैं और शरीरहेतु ऊर्जा-प्राप्तिके विविध स्रोतोंकी विशद विवेचना है, जिनसे मनुष्य स्वस्थ रहकर पूर्ण जीवन आनन्दपूर्वक जी सकता है। इस उपनिषद्को 'कैसा जीवन जियें, जिससे जीवन ही हमारे लिये उस परमपिताके सांनिध्यहेतु सहायक हो सके'—इसकी संक्षिप्त व्याख्या कह सकते हैं।

इसके बाद इस क्रममें महर्षि श्वेताश्वतरद्वारा उपदिष्ट श्वेताश्वतरोपनिषद् है। इसका प्रारम्भ ऋषि इस प्रकार करते हैं—

एक बार ब्रह्मवादी ऋषियोंकी एक परिषद् निम्न प्रश्नोंपर विचारहेतु आहूत की गयी। प्रश्न थे—

जगत्कर्ता परमात्मा क्या है?

हम कहाँसे, किसकी प्रेरणासे उत्पन्न हुए?

हमारा पालक कौन है?

हम किससे जीते हैं?

हम किसमें स्थित हैं?

किसके नियमसे हमें सुख-दुःखादिकी प्राप्ति होती है?

—इन्हीं प्रश्नोंपर विचार तथा उत्तरकी विवेचना इस उपनिषद्में है। प्रथम अध्यायमें ही जीवनकी परम प्राप्ति क्या है तथा उसे जाननेकी अनिवार्यताका वर्णन करते हुए ऋषि बताते हैं—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे
विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥
(१।११)

उस देव-परमेश्वरको निरन्तर ध्यानद्वारा (समस्त चराचरमें व्याप्त) जान लेनेपर, सर्वबन्धनोंका नाश हो जाता है, क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका चक्र समाप्त हो जाता है। उसकी उपासनासे शरीर छोड़नेपर जीव, समस्त ऐश्वर्यका त्याग करके निर्द्वन्द्व पूर्णताकी स्थितिको प्राप्त करता है।

द्वितीय अध्यायके पाँचवें मन्त्रमें मानवके हेतु ओजपूर्ण प्रेरणादायी सम्बोधन हुआ है। यथा—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

अर्थात् हे अमृतपुत्रो! तुम सब सुनो—उपासनाद्वारा मैं गुरुरूपमें तुमसे मिलता हूँ। सूर्य-किरणोंकी भाँति तुम्हारे समीप कीर्ति आये, तुम उस दिव्य कीर्तिसे चराचरको लाभान्वित करो।

इस उपनिषद्के दूसरे अध्यायमें साधना और ध्यान-योगकी विशद मीमांसा है। तृतीय अध्यायमें परमात्माकी सर्वव्यापकताका वर्णन, चतुर्थ अध्यायमें तत्त्वबोध, पञ्चम अध्यायमें प्रकृति, जीव और परमेश्वरके सम्बन्धका विश्लेषण तथा अन्तमें उस परमपिताके स्वरूप एवं महत्त्वका वर्णन कर उपनिषद्का उपसंहार किया गया है।

इसके उपरान्त इस क्रममें छान्दोग्योपनिषद् है। यह उपनिषद् सामवेदीय तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत है। अपने-आपमें यह उपनिषद् भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

इसमें जीवात्माका विवेचन, मनको उन्नतिका साधन कैसे बनायें, योग-साधनामें साधककी अनुभूतियाँ, हृदयस्थ परमात्मानुभूति, यज्ञोंका विस्तारपूर्वक विवेचन, पूर्णाक्षर ओऽम्का तथा वर्णात्मक अ उ म्का विवेचन है। जगत्में सारोंका सार क्या है, इसका वर्णन करते हुए ऋषि बताते हैं—

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः॥ (१।१।२)

अर्थात् इन पञ्चमहाभूतोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल, जलोंका सार अन्नादि औषधियाँ (खाद्य पदार्थ), औषधियोंका सार मनुष्य-देह, मनुष्यका सार उसकी वाणी है, वाणीका सार ऋक् अर्थात् परमात्माकी स्तुति है, ऋक्का सार साम (स्तुतिका सस्वर गायन) और सामका सार

भगवान्का नाम-गायन अर्थात् सबका सार प्रणवरूप भगवन्नाम ही है। इसके उपरान्त ऋषि कहते हैं—

स एष रसाना ꣳरसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः॥

(१।१।३)

यह जो आठवाँ सारोंका सार है, रसोंमें रसतम है, वह है—भगवन्नाम। यही परमसार है, परमधाम है, सर्वोत्कृष्ट है।

सम्पूर्ण चराचर जगत् क्या है, इस विषयमें ऋषिका उपदेश है—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।

(३।१४।१)

अर्थात् यह सारा जगत् निश्चय ही ब्रह्म है, यह उसीसे उत्पन्न होनेवाला, उसीमें लीन होनेवाला और उसीमें चेष्टा करनेवाला है—इस प्रकार शान्त (राग-द्वेषरहित) होकर उपासना करे।

ज्ञान-पिपासु अध्यात्मकी ओर बढ़नेवाले साधकोंको इस उपनिषद्का अध्ययन-अनुशीलन बड़ा ही हितकर सिद्ध होगा। ऋषियोंद्वारा दृष्ट तथा सृष्ट साहित्यकी यह विशेषता होती है कि जितनी बार उसका अध्ययन किया जायगा, उससे नवीन ज्ञान प्राप्त होता ही रहेगा।

एकादश उपनिषदोंके क्रममें बृहदारण्यकोपनिषद् अन्तिम है। यह अपने नाम बृहद्के अनुरूप ही बृहदाकार उपनिषद् है। इस उपनिषद्में प्राणकी विवेचना, उसका जीवन तथा आध्यात्मिक प्रगतिहेतु उपयोग, यज्ञोंकी विशद व्याख्या, प्रेमका स्वरूप, वर्णव्यवस्था आदिका बड़ा ही सारगर्भित विश्लेषण है।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्थाकी व्याख्या करते हुए ऋषि कहते हैं—

स यत्रैतत्स्वप्न्यया चरति ते हास्य लोकाः······॥ अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद·····। सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते॥

(२।१।१८-१९)

अर्थात् जिस अवस्थामें यह जीवात्मा स्वप्नमें लीन होता है, उस समय सम्पूर्ण लोक जहाँ यह विचरण करता है, इसके स्वरचित होते हैं। जब यह जीवात्मा सुषुप्ति-अवस्थामें पहुँचता है तो उसकी सत्ता हृदयस्थ आत्मसत्तामें ही निमग्न होती है। इस उपनिषद्की अध्यात्म-विवेचना बड़ी ही सारगर्भित है।

श्रीमद्भगवद्गीता क्या है, इसे बतानेहेतु विद्वान् कहते हैं—

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।'

अर्थात् सब उपनिषदें गौरूप हैं और उनका दोहन करनेवाले गोपालनन्दन योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं। वही दुग्धरूप यह गीतामृत है अर्थात् विश्वमान्य ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदोंका ही साररूप है—नवनीत है। दुग्धका तो अपना महत्त्व है ही, किंतु स्वयं परिश्रम कर, मनन-अनुशीलन कर जो रससार प्राप्त होता है उसका आनन्द ही अलग है। अतः गोरूपी उपनिषद्-साहित्यका मनन-अनुशीलन कर हृदयको उस परम रस-सिन्धुकी रसानुभूतिसे आप्लावित करना चाहिये।

'माँ'

(श्रीहुकुमचन्दजी सावला)

हिमालयसे ऊँची है 'माँ' किन्तु; पाषाण-सी कठोर नहीं।
सागरसे गहरी है 'माँ' किन्तु; सागर-सी खारी नहीं।
वायु-सी गतिशील है 'माँ' किन्तु; वायु-सी अदृश्य नहीं।
परमेश्वरकी जननी है 'माँ' किन्तु; परमेश्वर-सी दुर्लभ नहीं।
'माँ' की कोई उपमा नहीं हो सकती क्योंकि; 'माँ' उप····· 'माँ' नहीं हो सकती।

परोपकार ही सर्वोच्च धर्म

(डॉ० श्रीरामानन्दजी तोष्णीवाल)

भारतीय चिन्तन, दर्शन एवं साहित्यमें परोपकार, परहित तथा लोक-कल्याण-जैसी धारणाओंको बहुत महत्त्व दिया गया है। सभी उपनिषदों, पुराणों एवं अन्य ग्रन्थोंका सार परोपकार ही है। संसारमें श्रेष्ठ धर्म परहित ही है। आदिकाव्य 'श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' का स्रोत परपीड़ासे उत्पन्न करुणाकी अनुभूति ही है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में तो सभी प्राणियोंके कल्याणकी कामनामें निरत रहनेको कहा गया है—'सर्वभूतहिते रताः।'

अठारह पुराणोंका सार यही है कि परोपकार ही पुण्य है और परपीड़न ही पाप है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

आचार्य चाणक्य कहते हैं कि जिस मनुष्यके हृदयमें परोपकार बसा हुआ है, वहाँ विपत्ति आ ही नहीं सकती, वहाँ तो नित्यप्रति समृद्धि ही आती है—

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे॥

(चा० नी० दर्पण १७। १५)

भर्तृहरिने कहा है कि इस पृथ्वीपर परोपकारसे बड़ा कोई पुण्य नहीं है—

तथाप्येतद्भूमौ नहि परहितात्पुण्यमधिकं।

(शृंगारशतक ४७)

महाकवि माघ कहते हैं कि सज्जन, स्वभावसे ही सदा सब प्राणियोंका उपकार करनेमें लगे रहते हैं—

उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।

(शिशुपालवध १६। २२)

विद्यापति कहते हैं कि सज्जन पुरुष सदैव परोपकार करते हैं—

भल जन करथि परक उपकार।

(पदावली ३२१। ५)

भक्तिकालके समस्त काव्यमें पीड़ाका अनुभूत केन्द्र 'स्व' न होकर 'पर' है। कबीर, नानक, दादू, रैदास, जाम्भोजी आदि महान् संत अत्यन्त संवेदनशील रहे हैं और वे पशु-पक्षी, पेड़-पौधों आदि तककी पीड़ाको समझते रहे हैं। परायी पीड़ाकी अनुभूति ही वैष्णवता मानी गयी है। संत नरसी मेहता कहते हैं—

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाणे रे।

संत मलूकदास कहते हैं कि दूसरोंकी पीड़ाको अपनी पीड़ा मानना ही धार्मिकताकी कसौटी है—

मलूका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो काफिर बे-पीर॥

कवि मंझन कहते हैं कि जो दूसरोंकी भलाईके लिये कष्ट सहते हैं, वे ही मनुष्य कहलानेके योग्य हैं—

मैं बलि बलि तिन्ह परसे पैरा। पर दुख दुखी हिया जिन्ह केरा॥
कारन आपु दुखी सभ होई। पर दुख दुखी सो बिरुला कोई॥
पर सुख लागि जे दुख सहहिं, गनिय ते जन संसार।

(मधुमालती ३७५। ४-५, ७)

(क) परोपकार ही श्रेष्ठ धर्म—तुलसीदासजी परोपकारको ही श्रेष्ठ धर्म मानते हैं। वे कहते हैं कि कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गङ्गाकी भाँति सबका हित करनेवाली हो—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

(रा०च०मा० १। १४। ९)

स्वयं भगवान् राम कहते हैं कि दूसरोंकी भलाईके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरोंको कष्ट पहुँचानेके समान कोई पाप नहीं है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

(रा०च०मा० ७। ४१। १-२)

इसीलिये गोस्वामीजीने दूसरोंके हितको हानि पहुँचानेवालेको दुष्टकी संज्ञासे अभिहित किया है—

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥

(रा०च०मा० १। ४। १-२)

(ख) परोपकारी व्यक्ति ही 'परम बड़भागी'—श्रीरामचरितमानसमें 'बड़भागी' (सौभाग्यशाली) शब्दका प्रयोग विशेषणके रूपमें अनेक बार हुआ है। विशेषतः इसका प्रयोग भगवान्‌के प्रेमी भक्तों, सगुण भक्तों, अंगद

और हनुमान्-जैसे दास्य भक्तों तथा काकभुशुण्डि-जैसे भक्तिकी याचना करनेवाले भक्तोंके लिये हुआ है—

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

(रा०च०मा० ४। २३।७)

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

(रा०च०मा० ४। २६।१३)

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥

(रा०च०मा० ६। ११।७)

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥

(रा०च०मा० ७। ८५।३)

दूसरी ओर 'अतिशय बड़भागी' शब्दका प्रयोग श्रीरामचरितमानसमें केवल एक ही बार अहल्याके लिये हुआ है—

अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

(रा०च०मा० १। २११, छं०)

परंतु श्रीरामचरितमानसमें परमार्थके लिये प्राणोत्सर्ग करनेवाले जटायुके लिये 'बड़भागी' शब्दके चरम रूप 'परम बड़भागी' शब्दका प्रयोग किया गया है—

राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥

(रा०च०मा० ४। २७।८)

इस परमार्थ-भावनाके कारण रामने गीधको भी वह दुर्लभ गति प्रदान की, जिसकी याचना योगी जन भी करते हैं। स्वयं भगवान् राम कहते हैं कि जिनके हृदयमें परमार्थकी भावना रहती है, उनके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वस्तुत: परमार्थी व्यक्तिको कुछ भी प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि वह पूर्णकाम हो जाता है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥

(रा०च०मा० ३। ३१। ९-१०)

इस प्रकार गोस्वामीजीने जटायुके परोपकारी व्यक्तित्वको 'परम बड़भागी' विशेषणसे गौरवान्वित किया है। यह 'परम बड़भागी' विशेषण परोपकारकी विशाल भावभूमिपर आधारित है।

(ग) परोपकार स्वयं स्फूर्त होना चाहिये—सच्चा परोपकारी व्यक्ति किसीकी याचनाकी प्रतीक्षा या अपेक्षा नहीं रखता। वह स्वभावत: ही परोपकार करता रहता है। भर्तृहरिने सत्य ही कहा है कि सूर्य बिना प्रार्थनाके ही कमलको खिला देता है, चन्द्रमा कुमुदिनीको विकसित करता है और मेघ जल बरसाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सत्पुरुषका परोपकार स्वयं स्फूर्त होता है—

पद्माकरं दिनकरो विकची करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
संतः स्वयं परहितेसु कृताभियोगाः॥

(नीतिशतक ७४)

जटायु भी सीताके आर्तनादको सुनकर बलाढ्य रावणपर वज्रकी भाँति टूट पड़ा। उसने सीतासे सहायताकी याचनाकी प्रतीक्षा नहीं की। वस्तुत: उसका स्वभाव ही परमार्थ करनेका है। गोस्वामीजी कहते हैं कि परोपकारी व्यक्ति अपने सत्कर्मको तथा कपटी व्यक्ति अपने कपटको मृत्युपर्यन्त नहीं त्यागते हैं। जटायु सीताको छुड़ानेके प्रयत्नमें प्राणोत्सर्ग कर देता है और मारीच मरते समय भी रामकेसे स्वरमें 'हा लक्ष्मण' कहकर सीताको धोखा देता है—

सुकृत न सुकृती परिहरइ कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥

(दोहावली ३४१)

(घ) जगत्-हितके कार्य मोक्ष-विरोधी नहीं, मोक्षदायक—तुलसीदासजीका समय भारतीय धर्म एवं संस्कृतिके लिये घोर संकटका काल था। उस समय भारतीय समाज जीवनके प्रति उदासीन हो गया था। उसके जीवनमें कर्मयोग तथा अन्य पुरुषार्थोंके लिये कोई स्थान नहीं था। इसके फलस्वरूप वह जीवनकी संघर्षमय चुनौतियोंका सामना करनेकी शक्ति निरन्तर खोता जा रहा था। ऐसे समयमें तुलसीदासजीने वेदान्तके मोक्षका समर्थन करते हुए जगत्-हितायको पुन: नये परिप्रेक्ष्यमें स्थापित किया। उन्होंने बताया कि जगत्-हितायका सिद्धान्त मोक्षदायक एवं वेदसम्मत है—

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

(रा०च०मा० १। ८४। १-२)

गोस्वामीजीने वेदान्तके इस स्वरूपको पहचाना और जटायुके प्रसंगके द्वारा जन-सामान्यका उद्बोधन किया। इस प्रकार उन्होंने भी परोपकारको सर्वोच्च धर्मके रूपमें प्रस्थापित किया।

'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'

(डॉ० श्रीगदाधरजी त्रिपाठी 'शास्त्री')

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' हे गोविन्द! यह सम्पूर्ण संसार तुम्हारे द्वारा निर्मित है। इसके सभी पदार्थ तुम्हारे ही हैं। इसमें जो कुछ भी है, वह सब तुम्हारा ही दिया हुआ है। इसलिये मैं जो कुछ अर्पण कर रहा हूँ, वह सब तुम्हारे दिये हुए वस्तु-समूहका ही एक अंश है। हे प्रभो! यह भी तुमको अर्पित है। मैं ऐसा करनेमें केवल निमित्तमात्र हूँ। इसमें न मेरा कुछ है और न ही मेरा कुछ लग रहा है।

कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये तैयार अर्जुनको जब मोह हुआ और उसने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि हे सखा! यदि मैं यह युद्ध करूँगा तो बहुत बड़ा रक्तपात होगा और इसका पातक मुझे लगेगा; तब भगवान् श्रीकृष्णने यही कहा था कि अर्जुन! तुम इस समय मोहाविष्ट होकर ऐसा कह रहे हो। यथार्थमें तुम न तो युद्धकर्ता हो और न ही इस युद्धके परिणामस्वरूप मिलनेवाले फलके भोक्ता। तुम तो केवल निमित्तमात्र हो। इसलिये यह विचार करना तुम्हारे अधिकारमें नहीं है कि तुम्हें क्या करना है और क्या करने अथवा न करनेसे तुमको क्या फल मिलेगा? तुम जो भी करो, उसे मुझको अर्पण कर दो। अर्जुन! इतना ही नहीं; तुम जो खाओ; मुझे अर्पित करो। तुम जो हवन करो; मुझे अर्पित कर दो। तुम जो दान दो; मुझे अर्पित कर दो। इससे तुम किसी भी प्रकारके अकल्याणके अधिकारी नहीं बनोगे। अपने लिये निमित्तमात्रका भाव रखकर जो भी कार्य करोगे और उसे मुझे अर्पित कर दोगे; तो तुम्हारा परम कल्याण होगा—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

इन दोनों उदाहरणोंमें एक उदाहरण ऐसे भक्तका है जो विनम्र भावसे भगवान्‌के सामने आत्म-निवेदन करता है और जो कुछ भी उसके पास है उसे प्रभुका मानकर उन्हींको अर्पण करना है। दूसरा उदाहरण ब्रह्म-स्वरूप, जगन्नियन्ता, जगदाधार भगवान् श्रीकृष्णके सिद्धान्त-वाक्यका है, जिसमें वे यह कहते हैं कि यह सब कुछ मेरा है, इसलिये इसे मुझे अर्पित कर दो और स्वयं निश्चिन्त हो जाओ।

किंतु इन दोनों कथनोंसे एक ऐसे सिद्धान्तका उद्घाटन समान रूपसे होता है, जिसके आधारपर यह कहा गया है कि इस जगत्‌में जो कुछ भी है, सभी ब्रह्मस्वरूप है और उससे इतर कुछ भी नहीं है।

सृष्टि-रचनाकी प्रक्रिया और इसमें पुद्‌गलकी स्वरूप-स्थिति इस सिद्धान्तको और अधिक स्पष्ट करती है। पृथ्वी, जल, पावक, आकाश और वायु—इन पाँचोंसे मिलकर यह जगत् बना है। पुद्‌गलरूप शरीरमें भी इससे इतर कुछ नहीं है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी मनुष्यके इस शरीरको अधम तक कह देते हैं—

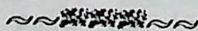
'छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥'

जब यह शरीर क्रियात्मक रूपसे संसारमें सक्रिय होता है, तब कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंका समूह ही इसे सक्रिय करता है, जिसे मन, बुद्धि और अहंकारके सहयोगसे यह शक्ति प्राप्त होती है। इनमें मन प्रमुख है, किंतु यह भी स्वतः सक्रिय और चैतन्य नहीं है। यह ब्रह्मरूप चैतन्य सत्ताका आभासक है और उसीसे चेतना प्राप्त कर पुद्‌गलको सक्रिय करता है। इस रूपमें सिद्धान्त यही है कि जो भी कुछ सृजित और सक्रिय है, वह उसी ब्रह्मकी चेतनाका परिणाम है। उससे भिन्न न किसी चेतनाका अस्तित्व है और न ही उसके बिना किसी तरहकी सक्रियता सम्भव है।

इस रूपमें भक्तका भगवान्‌के समक्ष किया गया आत्म-निवेदन यद्यपि उसकी भक्तिका सूचक है तथापि इससे उस सत्यका प्रतिफलन तो होता ही है कि भोक्ता, भोज्य और भुक्त केवल ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण जब कहते हैं कि जो खा रहे हो, वह मुझे अर्पित कर दो; जो हवन कर रहे हो, वह मुझे

समर्पित कर दो; जो दे रहे हो, वह मुझे दे दो और जो तप कर रहे हो, उसका भी अर्पण मुझे ही कर दो; तब उनके कहनेका आशय यही होता है कि खानेवाला मैं हूँ, खाद्य पदार्थ मैं हूँ और खानेकी क्रिया भी मैं ही हूँ। यज्ञरूपमें मैं हूँ, याज्ञिक-यजमान भी मैं हूँ और हवनकी जाती हुई हवि भी मैं ही हूँ। तुम दान देकर यदि यह मानते हो कि मैं दाता हुआ तो यह भ्रम है। दाता मैं हूँ, ग्रहीता मैं हूँ और दान की जानेवाली वस्तु भी मैं ही हूँ। भगवान्‌का यह उद्घोष है कि तुम तपस्या करके यदि स्वयं तपस्वी बनना चाहते हो तो अपने लिये बन्धन तैयार कर रहे हो। तपस्वी मैं हूँ, तप मैं हूँ और तपस्याकी सहज क्रिया भी मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न न कोई भोक्ता है, न कोई याजक है, न कोई दाता है और न कोई तपस्वी।

श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि अर्जुन! यदि अज्ञानवश कोई यह मानता है कि वह भोक्ता है, वह याजक है, वह दाता है और वही तपस्वी है तो ऐसा करके वह इनसे प्राप्त होनेवाले शुभ अथवा अशुभ फलके बन्धनमें बँध जाता है। इसमें जब वह शुभका भागीदार बनता है तो उसका फल भोगकर फिरसे कर्म करनेके लिये विवश हो जाता है और इस रूपमें उसका कर्म ही उसके लिये बन्धन-स्वरूप हो जाता है। यदि कोई अशुभ फलका भाजन बनता है तो वह इससे दुःखित होता है और इससे छूटनेके लिये भी कर्म-बन्धनका ही आश्रय लेता है। इस रूपमें कर्म चाहे शुभ हो अथवा अशुभ, वह पुद्‌गलके लिये बन्धनकारक ही होता है। यही कारण है कि भगवान् बार-बार कहते हैं 'तुम अपने सभी कर्म मुझको अर्पित कर दो; मैं तुम्हें तुम्हारे कर्म-बन्धनोंसे मुक्त कर दूँगा।' जबतक कर्म-बन्धनोंसे मुक्ति नहीं मिलती, तबतक न चाहते हुए भी जीव आवागमनके चक्रमें फँसा रहता है। जन्म और मृत्युरूपी आवागमनका यह बन्धन अनन्तकालतक चलता है और इससे प्राप्त होनेवाले दुःखका जीव भागीदार होता है। इसलिये चाहे भावका मार्ग अपनाएँ और चाहे ज्ञानका—श्रेय दोनों ही प्रकारसे प्राप्त होता है। बस, अपेक्षा यह है कि हम जो करते हैं, उसे भगवान्‌को अर्पित कर कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जायँ। यही मुक्तिकी प्राप्ति भी है।



भक्तगाथा—

ब्रह्मलीन स्वामी श्रीलीलाशाहजी

ब्रह्मलीन स्वामी श्रीलीलाशाहजीका जन्म सन् १८८० ई० में सिन्ध प्रान्त (पाकिस्तान)-के हैदराबाद जिलेके एक छोटेसे ग्राममें हुआ था। ४-५ वर्षकी अवस्थामें ही माता-पिताका देहान्त हो गया, अतः इनका बचपन बड़े कष्टमें बीता। बाल्यावस्थामें ही साधु-संतोंकी सेवामें मन लग गया और १५-१६ वर्षकी अवस्थामें घर छोड़कर करीब सौ किलोमीटर दूर एक महान् संत स्वामी केशवरामजीके पास पहुँचकर इन्होंने उनको गुरु बना लिया, फिर उनकी संनिधिमें थोड़ी-बहुत विद्या भी प्राप्त की। अनन्तर २० वर्षकी अवस्थामें वहाँसे उत्तर भारतमें आकर कठिन तपस्या की। जंगलोंमें रहे और अपने शरीरको खूब तपाया। ईश्वरकी कृपा हुई फिर तो आत्मज्ञानका दान करने लगे। समाजकी भी सेवा की। विद्यार्थी और कन्याओंके उद्धारपर विशेष ध्यान दिया। कई विद्यालय, धर्मशाला, गोशाला, नारीशाला स्थापित करवाये। आश्रम बनानेके विरोधमें ये कहते थे कि अगर आश्रम बनाना है तो फिर घर क्यों छोड़ा? गरीबों और दुःखियोंका बहुत भला किया। सब लोग जात-पाँतका भेद छोड़कर उनके चरणोंमें लिपटते थे। सेवा करो और साधना करो—ये उनके जीवनके मूल मन्त्र थे। ऐसे ही साधनामय जीवनचर्या और प्रभुका आश्रय लेते हुए सन् १९७३ ई० में पूज्यचरण ब्रह्मलीन हो गये। उनके उपदेश बड़े मार्मिक और जीवनमें काम लाने योग्य हैं। वे घूम-घूमकर साधनाकी बातें बताया

करते थे। यहाँ उनके उपदेशोंका सार-अंश दिया जा रहा है—

(१) भोग और आनन्द

जबतक मनुष्य नाना प्रकारके भोगोंमें खुले रूपसे विचरता रहेगा, आशाओं-शंकाओंको बढ़ाता रहेगा, तबतक आत्मध्यान, आत्मज्ञान और आत्मानन्दमें स्थिरता नहीं रहेगी। जबतक सांसारिक पदार्थोंसे विरक्ति नहीं होगी और उनमें दृढ़ प्रीति रहेगी, तबतक सत्यकी ओर झुकाव नहीं हो सकता। आसुरी पदार्थोंमें हमारी आसक्ति इसलिये होती है कि उनमें हमें सुख भासता है। ऐसा होता है अविचारके कारण। अगर विचार करके देखें तो संसारकी कोई भी वस्तु सुन्दर, आनन्दप्रद, प्रेममय और सत्य-रूप नहीं है। शरीरको ही ले लीजिये। भले ही बिना विचारके यह सुन्दर, आनन्द, प्रेम और सत्यपनेमें आता है, परंतु विचार करके देखेंगे तो ये बातें उस (शरीर)-में मिल नहीं सकतीं।

आप अपनेको समझते हैं कि मैं देह हूँ अथवा यह देह मेरी है, पर यह बात झूठ है। यह देह तो पाँच तत्त्वोंसे बनी है। यह हाड़-मांसका पिंजड़ा है—इसमें तो मल-मूत्र आदि गन्दा भरा हुआ है। विचारपूर्वक देखो कि इसमें कैसी चीज है? कानोंसे मल बहता है, आँखोंमें कीच दीख रही है। मुखसे थूक आदि निकल रहे हैं और नासिकामेंसे मल बह रहा है। शरीरको रोगीकी स्थितिमें देखकर अथवा वृद्धावस्थाको देखकर कैसा प्रतीत होता है? ताजी हवा जो रात-दिन शरीरमें प्रवेश करती है, जब वह शरीरसे बाहर निकलती है तो हम देखें कि क्या बनकर निकलती है? खाना-पीना जो भी अंदर जाता है वह भी देखें कि क्या बनकर बाहर निकलता है? शरीरमें कोई फोड़ा-फुंसी हो जाय तो उसमेंसे क्या निकलता है? इसी प्रकार मृत्युके उपरान्त इस शरीरको यदि दो-तीन दिन रख दिया जाय तो उस शवके पास कोई खड़ा नहीं हो सकेगा। तात्पर्य यह कि देहका मतलब है—मुरदा। इसलिये शरीर आनन्द-रूप नहीं है। अत: आशाओं-शंकाओंको त्यागकर सुख प्राप्त करो। भोगोंमें कोई आनन्द नहीं है, विषयोंमें कोई आनन्द नहीं है, आनन्द है—परमात्माके भजनमें, उनकी सेवामें।

(२) आनन्दस्वरूप भगवान्

नाम-महिमा—सत्सङ्ग करते समय बीच-बीचमें भगवान्‌की जय मनानी चाहिये। जयका अर्थ है—मङ्गल। बीच-बीचमें भगवान्‌का नाम लेनेसे शान्ति मिलती है। नामकी बड़ी महिमा है। नाम लेनेसे काम हो जाता है, चाहे वह कैसा भी हो। जीभ जब भगवान्‌का नाम नहीं लेती है, तब वह जीभ नहीं है—चामका टुकड़ा है।

वास्तविक सुख—विषयोंका आनन्द आनन्द नहीं है। वह वास्तविक सुख नहीं है। उसको सुखकी मिथ्या परछाईं समझना चाहिये। इस संसारमें आनेका उद्देश्य है—अपनेको जानकर जन्म सफल करना। सभी आनन्द चाहते हैं। परंतु मालूम नहीं है कि सच्चा आनन्द कहाँ मिलता है? बाहरके पदार्थोंमें आनन्द कभी नहीं मिल सकता। वे आनन्दस्वरूप हैं ही नहीं तो आनन्द कहाँसे मिलेगा?

कर्तव्यपालन—जो अपने कर्तव्यका पालन करता है वह धन्य है, पूज्य है। फिर भले ही वह गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता हो या संन्यासी हो; भगवान् उन्हें नित्य दर्शन देते हैं। यह बात सच्ची है कि भगवान् हम सभीको नित्य दर्शन देते हैं, परंतु पहले हम यह समझें कि भगवान् हैं क्या? शब्द और स्पर्शसे जो जान लिये जायँ वे भगवान् नहीं हैं। भगवान् तो आनन्दस्वरूप हैं। 'सब जगह, सब समय, सबमें भगवान् व्याप्त हैं'—यह भावना करो, सब प्रभुमय दीखने लगेगा। सत्सङ्ग करो, सत्सङ्ग कभी-कभी नहीं वरन् नित्य करना चाहिये। व्यवहारमें हम सच्चे रहें और त्याग धारण करें।

संत लोग सदा देते ही रहते हैं। जो संत ज्ञान देते हैं, भक्ति सिखाते हैं, वे ही सच्चे संत हैं। संत, सरोवर, बादल और वर्षा—ये चारों सदा दूसरोंका कल्याण करते हैं। बाहरी पदार्थोंमें आनन्द नहीं है। चौदह लोकोंके पदार्थोंसे भी तृष्णाकी पूर्ति होनेवाली नहीं है। जितने भोग अपने मनीराम (मन) और हृदयको भायेंगे, उतना ही उनके लिये तृष्णा बढ़ेगी। तृष्णा कभी छोड़ेगी नहीं तो क्या उसका कोई उपाय नहीं है? हाँ है, केवल

संतोष-धन आ जाय तो आप मालामाल हो जायँगे।

स्वस्थ रहनेके लिये आवश्यक बातें—स्वास्थ्यके लिये हँसना आवश्यक है। क्रोधके समय भोजन मत करो। बकवास करते समय भी भोजन मत करो। भोजनका ग्रास खूब चबा-चबाकर खाओ। पवित्रतासे शान्तिपूर्वक भगवान्को अर्पणकर भोजन करो, ऐसा भोजन प्रसाद हो जाता है। भोजन करनेका भी एक ढंग है। एक बार हम एक स्थानपर भोजन कर रहे थे, वहाँ देखा कि जबतक हमने एक रोटी खायी उतने ही समयमें पास बैठा एक लड़का चार रोटी खा गया। ऐसा मत करो। याद रखो कि सत्सङ्गमें सब बातोंका पता लगता है। सत्सङ्ग महाधन है। सत्सङ्गसे लोक-परलोक दोनोंका ज्ञान हो जाता है। शरीर स्वस्थ रखो और मनको भी नीरोग बनाओ। विषय-विकार मनके रोग हैं, उनको पास नहीं आने देना चाहिये। फिर समझो आनन्द आपसे दूर नहीं है। समाधिमें तो आनन्द मिलता ही है, परंतु जब जाग्रत्-अवस्थामें आनन्द भासने लगे, तब सफलता है। जब मनकी काई दूर होगी तो आनन्द-ही-आनन्द मिलेगा। आनन्द बाहरसे नहीं आता है। आप स्वयं आनन्दस्वरूप ही हो। मनीराम (मन)-को बुरे सङ्गसे बचाओ। आप शक्तिके भण्डार हो, अपनी शक्तिको पहचानो।

(३) हमारी दौड़

अपनेको पहचानो—हम कौन हैं? लाखों-करोड़ों लोगोंको यह मालूम नहीं कि संसारमें आनेका हमारा उद्देश्य क्या है! हम सब किस बातके लिये यहाँ आये हैं? आनन्दके लिये। कौन कहेगा कि हमको आनन्द नहीं चाहिये? सब कहेंगे कि हमको सुख चाहिये, आनन्द चाहिये। गहरी नींदमें क्यों जाते हो? आप कहोगे सुखके लिये। परंतु जिनमें तुम सुख मानते हो, वे—स्त्री, बच्चे, घर, पदार्थ आदि क्या वहाँ हैं? नहीं तो फिर नींदमें क्यों चले जाते हो? इससे प्रतीत हुआ कि आनन्द है। हम सभी आनन्दके लिये दौड़ रहे हैं और जबतक पूरी आनन्दकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक हमारी दौड़ चालू रहेगी। दूसरे जो भी आनन्द हैं, वे सब आभासमात्र हैं, असली नहीं हैं—*'आनंद वह जो नित पूरन हो वह आनंद ही आप हो'* आप शरीर नहीं हो, परंतु दूसरेके धर्मको आरोप करके अपनेको शरीर मानकर बैठे हो। आप शरीरसे अलग हो। शरीरमें जो गर्भाशय है वह अग्निका अंश है, जो तरल है वह जलका अंश है, जो हिलता-डुलता है वह पवनका अंश है, जो ठोस है वह पृथ्वी है और जो पोलापन है वह आकाशका अंश है। आप शरीर नहीं हो, मन नहीं हो, न बुद्धि हो और न प्राण। आप उस चेतन, सत्-स्वरूप, आनन्दस्वरूप परमात्माके अंश हो, अतः अपनेको ठीकसे पहचानो और पहचानकर वैसा ही बर्ताव करो। आनन्द आपकी झोलीमें होगा।

सुख-दुःख—आपदामें प्रसन्नचित्त रहना ही ज्ञानीका लक्षण है। ज्ञानी मनुष्य कभी भी दुःखोंसे चिन्ताग्रस्त नहीं होता और उसका मन पर्वतकी भाँति एक स्थानपर सदैव स्थिर रहता है। जो भी उसके साथ घटित होता है, उसे वह भगवान्की लीला समझता है। वह देहाभाससे विरक्त होकर अपनेको सुखी समझता है।

दुःखको देखकर डरना नहीं चाहिये, धीरज धारण करनेसे दुःख भी सुखरूप हो जाते हैं। सुख भी चले जाते हैं और दुःख भी चले जाते हैं, परंतु देखनेवाला सदा ही रहता है—

सुख सपना, दुख बुदबुदा दोनों हैं मेहमान।
इनका आदर कीजिये जो भेजे भगवान॥

[प्रेषक—कीमतरायजी]

भूल-सुधार

(१) 'कल्याण' वर्ष ७४, संख्या ३ मार्च-अङ्कके आवरण-पृष्ठ-३ पर 'आवश्यक सूचना एवं नम्र निवेदन' शीर्षकके बारहवीं पंक्तिमें 'अठारह महापुराणों'के स्थानपर 'अठारह महापुरुषों' छप गया है, जिसे ठीक कर लेना चाहिये।

(२) 'कल्याण' वर्ष ७४, संख्या ४ अप्रैल-अङ्कके पृष्ठ-संख्या ६०० पर 'व्रतोत्सव-पर्व' शीर्षकके अन्तर्गत छपे 'दक्षिणायन'को 'उत्तरायण' तथा 'वसन्त-ऋतु'को 'ग्रीष्म-ऋतु' कर लेना चाहिये।

हिन्दुस्तानमें ही हिन्दू अल्पसंख्यक बन जायगा

[परिवार-नियोजन एवं गर्भपातका दुष्परिणाम]

(श्रीगणेशदासजी सोनी)

जनसंख्या-वृद्धिको भारतकी सबसे बड़ी समस्या और अन्य सभी समस्याओंकी जड़ माना जा रहा है। सरकार अपनी योजनाओंकी असफलताको जनसंख्या-वृद्धिके मत्थे मढ़कर हमेशा यही राग अलापती रहती है कि हमने अपनी योजनाओंद्वारा बहुत-सी उपलब्धियाँ हासिल कीं, परंतु जनसंख्या-वृद्धिके कारण उनका पूरा लाभ जनताको नहीं मिला। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी भारत-सरकारको सलाहके नामपर जनसंख्या-वृद्धिके भयंकर दुष्परिणाम बताकर हमेशा भयभीत करती रहती हैं। अतः सरकारने अपना पूरा ध्यान जनसंख्या-नियन्त्रणकी ओर लगा दिया है और इसके लिये तरह-तरहके उपाय किये जा रहे हैं।

किंतु जनसंख्या-नियन्त्रण-हेतु परिवार-नियोजनके कृत्रिम साधन तथा गर्भपात आदि अधार्मिक, अनैतिक एवं स्वास्थ्यके लिये हानिकारक तो हैं ही; इसके अतिरिक्त इनसे सबसे बड़ा जो नुकसान होनेवाला है, वह यह है कि परिवार-नियोजनका जो कार्यक्रम आज जिस ढर्रेपर चल रहा है, वह भारतके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक ढाँचेको पूर्णतया बदल देगा, उलट देगा और हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान न रहकर कोई और देश बन जायगा। यह बात कोई काल्पनिक नहीं है, कोई गप्प नहीं है, बल्कि ठोस तथ्योंपर आधारित है। गणितके सिद्धान्तोंकी तरह सत्य है। इसे आँकड़ोंके द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

यह बात तो सभी जानते हैं कि भारतमें परिवार-नियोजनका कार्यक्रम मुख्यरूपसे हिन्दू-समुदायद्वारा ही अपनाया जा रहा है, अल्पसंख्यक-समुदाय इसे अपनानेको कतई तैयार नहीं हैं। वे एकसे अधिक विवाह करनेके लिये स्वतन्त्र हैं तथा उनके परिवारोंमें आठ-आठ, दस-दस या इससे भी अधिक बच्चे पैदा होना एक आम बात है। हिन्दू लोग इस बातपर अधिक ध्यान नहीं देते, सोचते हैं कि इससे क्या फर्क पड़नेवाला है? वे सिर्फ यही जानते हैं और यही सोचते हैं कि परिवार-नियोजनको अपनानेसे उनका परिवार सीमित रहेगा। इससे उनका परिवार सुखी रहेगा, समाज सुखी रहेगा और देशकी सारी समस्याएँ समाप्त हो जायँगी, जिससे सारा देश सुखी हो जायगा। परंतु वास्तवमें ऐसा है नहीं। वस्तुस्थिति तो यह है कि एक वर्गके द्वारा परिवार-नियोजनको अपनाने और दूसरे वर्गद्वारा उसे न अपनानेसे जनसंख्याका प्राकृतिक संतुलन पूर्णतया बिगड़ जायगा, जिससे देशमें भारी संकटकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी। इस स्थितिको कोई भी व्यक्ति समझ नहीं रहा है, सभी लोग भेड़चालकी तरह परिवार-नियोजनका समर्थन करनेमें लगे हुए हैं। परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने अपने प्रवचनों-उपदेशोंमें परिवार-नियोजन, गर्भपात एवं भ्रूण-हत्याका तीव्र विरोध किया है और समस्त हिन्दुओंको आगाह किया है कि इससे वर्तमानमें बहुसंख्यक कहलानेवाला हिन्दू-वर्ग आगे चलकर अल्पमतमें आ जायगा और हिन्दुस्तान खतरेमें पड़ जायगा।

मैंने स्वामीजीकी इस बातपर गम्भीरतासे मनन-चिन्तन किया और गणितके आधारपर गणना करके यह जाननेकी कोशिश की कि परिवार-नियोजनको अपनाने और इसको न अपनानेसे अलग-अलग परिवारोंमें आगे चलकर कितना अन्तर आ सकता है! और जब गणितकी गणनाके अनुसार चौंकानेवाला निष्कर्ष सामने आया तो मैंने निश्चय किया कि इस निष्कर्षकी जानकारी आम आदमीको दी जाय। परिवार-नियोजनके दुष्परिणामोंसे आम आदमीको अवगत कराया जाना वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें सर्वथा प्रासंगिक है।

परिवार-नियोजनके कुप्रभावोंको गणितकी गणनाके द्वारा स्पष्टरूपसे समझा-समझाया जा सकता है। इसके लिये आगे एक तालिका दी जा रही है, जिसमें सात श्रेणीके परिवारोंका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और यह बताया गया है कि परिवार-नियोजनके कार्यक्रमको अपनाने और इसको न अपनानेसे भिन्न-भिन्न परिवारोंमें आगे चलकर कितना अन्तर आ सकता है!

इस तालिकामें सात श्रेणीके परिवारोंके आगेकी चार पीढ़ियों (वर्तमान-समेत पाँच पीढ़ियों)-का अध्ययन किया गया है और यह माना गया है कि औसतन ३० वर्षके बाद नयी पीढ़ी आ जाती है। गणनाकी सुविधाके लिये हम यह भी मानकर चलते हैं कि प्रत्येक परिवारमें लड़कों और लड़कियोंका अनुपात बराबर रहता है। लड़कियोंको

ससुराल भेज दिया जाता है और लड़कोंके लिये बहुएँ ले आयी जाती हैं। इस तरह परिवारमें कुल सदस्य-संख्या अपरिवर्तित रहती है (असमय मृत्यु, असमय जन्म तथा शिशु-मृत्युको हम अतिरिक्त मानकर चलते हैं अर्थात् इन परिवारोंमें वास्तविक वृद्धि तालिकाके अनुसार ही मानी गयी है)। तालिका इस प्रकारसे है—

श्रेणी/समय ▶ ▼	वर्तमान (प्रथम पीढ़ी)	३० वर्ष बाद (दूसरी पीढ़ी)	६० वर्ष बाद (तीसरी पीढ़ी)	९० वर्ष बाद (चौथी पीढ़ी)	१२० वर्ष बाद (पाँचवीं पीढ़ी)	कुल संख्या
प्रथम परिवार— (हमारे बारह-हमारा पौबारह) वृद्धिदर ६ गुना	पति-पत्नी+१२ बच्चे (१ दम्पति) X	६ दम्पति—७२ ब. X	३६ दं.—४३२ ब. +	२१६ दं—२५९२ब. +	१२९६ दं.—१५५५२बं. +	१८५७६
द्वितीय परिवार— (हमारे दस-दसके बाद बस) वृद्धिदर ५ गुना	पति-पत्नी+१० बच्चे (१ दम्पति) X	५ दम्पति—५० ब. X	२५ दं.—२५० ब. +	१२५ दं.—१२५०ब. +	६२५ दं.—६२५० ब. +	७७५०
तृतीय परिवार— (हमारे आठ-हमारे ठाठ) वृद्धिदर ४ गुना	पति-पत्नी+८ बच्चे (१ दम्पति) X	४ दम्पति—३२ ब. X	१६ दं.—१२८ ब. +	६४ दं.—५१२ब. +	२५६ दं.—२०४८ ब. +	२६८८
चतुर्थ परिवार— (हम दो-हमारे छः) वृद्धिदर ३ गुना	पति-पत्नी+६ बच्चे (१ दम्पति) X	३ दम्पति—१८ ब. X	९ दं.—५४ ब. +	२७ दं.—१६२ब. +	८१ दं.—४८६ ब. +	७०२
पञ्चम परिवार— (हम दो-हमारे चार) वृद्धिदर २ गुना	पति-पत्नी+४ बच्चे (१ दम्पति) X	२ दम्पति—८ ब. X	४ दं.—१६ ब. +	८ दं.—३२ब. +	१६ दं.—६४ ब. +	११२
छठा परिवार— (हम दो-हमारे दो) वृद्धिदर शून्य	पति-पत्नी+२ बच्चे (१ दम्पति) X	१ दम्पति—२ ब. X	१ दं.—२ ब. +	१ दं.—२ ब. +	१ दं.—२ ब. +	६
सातवाँ परिवार— (हम दो-हमारे एक)	१६ दम्पति—१६ बच्चे X	८ दम्पति—८ ब. X	४ दं.—४ ब. +	२ दं.—२ ब. +	१ दं.—१ ब. +	?

तालिका-विश्लेषण—

प्रथम परिवार—उपर्युक्त तालिकामें प्रथम श्रेणीके परिवारमें वर्तमानमें पति-पत्नी तथा १२ बच्चे हैं, जिनमें छः लड़के और छः लड़कियाँ हैं। समयपर लड़कियोंको ससुराल भेज दिया जाता है और लड़कोंकी बहुएँ आ जाती हैं, इस तरह कुल सदस्य-संख्या अपरिवर्तित रहती हैं। वर्तमान पीढ़ीके इस एक परिवारसे दूसरी पीढ़ीमें छः परिवार बनते हैं (इस परिवारमें वृद्धिदर ३० वर्षोंमें ६ गुना है)। इन प्रत्येक परिवारोंमें फिर बारह-बारह संतानें पैदा होती हैं और आगेकी चार पीढ़ियोंतक यही क्रम चलता रहता है। ऐसा होनेपर पाँचवीं पीढ़ीमें अर्थात् १२० वर्षके बाद इस परिवारमें कुल सदस्योंकी संख्या होगी—१८५७६ जिसमें १५५५२ बच्चे, २५९२ उनके माता-पिता और ४३२ उनके दादा-दादी। (इसमें पहलेकी प्रथम दो पंक्तियोंके सदस्य तबतक मर चुके होंगे। यद्यपि व्यवहारमें कुछ परदादा-परदादी भी जीवित रहते हैं, परंतु कुछ दादा-दादी और माता-पिता

मर भी चुके होते हैं। अत: औसत आयुके आधारपर सभी माता-पिता और सभी दादा-दादीको जीवित माना गया है जबकि परदादा-परदादीको गणनामें शामिल नहीं किया गया है। तालिकामें जहाँ X का निशान लगा है, वे सदस्य तबतक जीवित नहीं रहेंगे।

द्वितीय परिवार—वर्तमानमें पति-पत्नी और १० बच्चे हैं, जिनमें पाँच लड़के तथा पाँच लड़कियाँ हैं। लड़कियोंको ससुराल भेज दिया जाता है और लड़कोंके लिये बहुएँ आ जाती हैं तथा इस तरह दूसरी पीढ़ीमें पाँच परिवारोंका निर्माण होता है; इसमें एक परिवारके बदले पाँच परिवार बनते हैं, इसलिये वृद्धिदर तीस वर्षमें पाँच गुना है। इस परिवारमें १२० वर्षके बाद कुल सदस्य-संख्या होगी—७७५० जिसमें ६२५० बच्चे, १२५० उनके माता-पिता एवं २५० उनके दादा-दादी।

तृतीय परिवार—वर्तमानमें पति-पत्नी और ८ बच्चे हैं—चार लड़के तथा चार लड़कियाँ, जिनसे चार परिवार बनते हैं। इस परिवारमें वृद्धिदर तीस वर्षमें चार गुना है। १२० वर्षके बाद इस परिवारमें कुल सदस्य-संख्या होगी—२६८८ जिसमें २०४८ बच्चे, ५१२ उनके माता-पिता एवं १२८ उनके दादा-दादी।

चतुर्थ परिवार—इसमें पति-पत्नी और ६ बच्चे हैं। इस परिवारकी पाँचवीं पीढ़ीमें अर्थात् १२० वर्षके बाद कुल सदस्य-संख्या होगी—७०२ जिसमें ४८६ बच्चे, १६२ माता-पिता और ५४ दादा-दादी।

पञ्चम परिवार—इसमें पति-पत्नी तथा ४ बच्चे हैं। इस परिवारमें वृद्धिदर तीस वर्षोंमें दो गुना है। १२० वर्षके बाद इस परिवारमें कुल सदस्य-संख्या होगी—११२ जिसमें ६४ बच्चे, ३२ माता-पिता एवं १६ दादा-दादी।

छठा परिवार—अब बारी आती है छठे परिवारकी, जिसमें वर्तमानमें पति-पत्नी और २ बच्चे हैं। यह परिवार 'हम दो-हमारे दो' के सिद्धान्तके अनुसार चलता है और आगेकी चार पीढ़ियोंतक परिवारमें दो-दो बच्चे ही पैदा होते हैं। इस परिवारमें १२० वर्षके पश्चात् कुल सदस्योंकी संख्या छ: होगी, जिसमें दो बच्चे, दो उनके माता-पिता और दो उनके दादा-दादी। इस वंशमें हमेशा औसतन छ: सदस्य ही रहेंगे अर्थात् दादा-दादी मरे, पोता-पोती जन्मे, रहे छ:-के-छ:, कोई वृद्धि नहीं हुई। इसमें मूलपर कोई ब्याज नहीं मिला, मूलके बदले सिर्फ मूल ही मिला और वृद्धिदर शून्य हो गयी।

सातवाँ परिवार—और अब क्रम आता है, सातवीं श्रेणीके परिवारका, जिसका नारा है—हम दो-हमारे एक। इसमें एक परिवारके बदले एक परिवार भी नहीं बनता प्रत्युत अगली पीढ़ीमें परिवार आधा हो जाता है। इसमें मूल इनवेस्टमेन्टके बदले मूल भी पूरा नहीं मिलता, आधा ही मिलता है। अत: ऐसी कम्पनीका बंद होना निश्चित ही है। अध्ययनकी सुविधाके लिये इसमें १६ परिवारोंका एक समूह बनाया गया है। वर्तमानके इन १६ परिवारोंमें १६ बच्चे पैदा होते हैं—८ लड़के और ८ लड़कियाँ, जिनसे अगली पीढ़ी (दूसरी पीढ़ी)-में आठ परिवार बनते हैं; इन आठ परिवारोंमें आठ बच्चे पैदा होते हैं, जिनसे तीसरी पीढ़ीमें चार परिवार बने। इनके चार बच्चोंसे दो परिवार बने और इनके दो बच्चोंसे एक परिवार बना अर्थात् १२० वर्षके पश्चात् पाँचवीं पीढ़ीमें इन १६ परिवारोंका एक परिवार शेष रह जायगा, जिसमें एक बच्चा होगा और वह आगे चलकर परिवार नहीं बना पायेगा—कुँआरा रह जायगा, कुँआरी रह जायगी। इस तरह आजके इन १६ परिवारोंका १२० वर्षके पश्चात् अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। अगर ये ही १६ परिवार १२ बच्चोंके हिसाबसे अर्थात् प्रथम श्रेणीके परिवारके अनुसार चलते तो १२० वर्षके पश्चात् इन १६ परिवारोंमें कुल मिलाकर ३ लाख सदस्य हो जाते, जिनसे एक पूरा बड़ा शहर बस जाता। परंतु 'हम दो-हमारे एक' के सिद्धान्तके अनुसार चलनेपर इनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। परिवार-नियोजनका यह उपहार मिला इनको!

इस तालिकामें पहलीसे छठी श्रेणीके छ: परिवार और सातवीं श्रेणीके सोलह परिवार कुल—बाईस परिवारोंका अध्ययन किया गया है। इसमें पाँचवीं, छठी एवं सातवीं श्रेणीके अठारह नियोजित परिवारोंमें १२० वर्षके पश्चात् कुल सदस्य-संख्या होगी—११८ जबकि पहलीसे चौथी श्रेणीके चार अनियोजित परिवारोंकी कुल संख्या हो जायगी—२९७१६। अत: इस तालिकाके विश्लेषणसे स्पष्ट है कि ६ से लेकर १२ बच्चोंतकके परिवारोंमें इसी दरसे आगे वृद्धि होते रहनेपर जनसंख्यामें तेजीसे बढ़ोत्तरी होगी। आज जनसंख्या-विस्फोटकी जो बात कही जा रही है, वह इसी गतिसे बढ़नेवाले परिवारोंद्वारा ही किया जा रहा है। चार बच्चोंके हिसाबसे बढ़नेवाले पाँचवीं श्रेणीके परिवारोंमें धीमी

गतिसे वृद्धि होती है, परंतु 'हम दो-हमारे दो' के हिसाबसे चलनेवाले छठी श्रेणीके परिवारमें हमेशा औसतन छः सदस्य ही रहते हैं, कोई वृद्धि नहीं होती; जबकि सातवीं श्रेणीके परिवार जो 'हम दो-हमारे एक' के आत्मघाती सिद्धान्तपर चलते हैं, वे तो जनसंख्याको घटानेकी दिशामें योगदान देते हैं और उनके इस त्यागका ईनाम उन्हें यह मिलता है कि आगे चलकर उनके वंशका नामोनिशानतक मिट जाता है। पाँचवीं, छठी और सातवीं श्रेणीके लोगोंद्वारा अपनाया गया परिवार-नियोजन पहलीसे चौथी श्रेणीके परिवारोंद्वारा अप्रभावी कर दिया जाता है। यदि संतानोत्पत्तिमें सक्षम युवा दम्पतियोंमेंसे ८० प्रतिशत लोग परिवार-नियोजन अपना भी लेते हैं और शेष २० प्रतिशत लोग नहीं अपनाते तो भी देशकी कुल आबादी बढ़ती रहेगी, क्योंकि २० प्रतिशत लोगोंद्वारा की गयी बेतहाशा वृद्धि, ८० प्रतिशत लोगोंके परिवार-नियोजनको समग्र राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे असफल कर देगी और देशमें जातिगत, वर्गगत असंतुलन पैदा होकर सम्पूर्ण देशका राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो जायगा और इसके साथ-साथ एक ही वर्गमें जनसंख्याकी अथाह वृद्धिसे देशमें लूटपाट, अमीर-गरीबके बीच वर्ग-संघर्ष तथा अन्य आर्थिक अपराधोंद्वारा देशकी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था डाँवाडोल हो जायगी।

व्यावहारिक रूपमें सभी जानते हैं कि अल्पसंख्यक-समुदाय परिवार-नियोजन-कार्यक्रम अपनानेको कतई तैयार नहीं है। वे खुलेआम कहते हैं कि उनके धर्ममें इसकी मनाही है और वे अपने धर्मके विरुद्ध यह कार्य करनेको तैयार नहीं हैं। दूसरी तरफ हिन्दू-समुदाय है, जो परिवार-नियोजनके नारों—'हम दो-हमारे दो' तथा 'हम दो-हमारे एक' को खुशी-खुशी अपना रहा है और अपना छोटा परिवार देखकर खुश हो रहा है। कोई इस समुदायके लोगोंसे पूछे कि क्या हिन्दू-धर्ममें परिवार-नियोजनको मान्यता दी गयी है? उसकी प्रशंसा की गयी है? जी नहीं, हिन्दू-धर्ममें भी कृत्रिम परिवार-नियोजन और गर्भपातको जघन्य अपराध बताया गया है। परंतु हिन्दू लोग अपने धर्मके प्रति गम्भीर नहीं हैं और हिन्दू-धर्माचार्य इतने कट्टर तथा सख्त नहीं हैं कि वे हिन्दुओंको धर्मकी बातें माननेके लिये बाध्य कर सकें। वास्तवमें हिन्दू-धर्माचार्योंको इतना शक्ति-सम्पन्न होना चाहिये कि वे 'उपदेश' के साथ जरूरी 'आदेश' भी दे सकें और उसे न माननेवालोंको सजा दे सकें। ऐसी व्यवस्था न होनेसे ही हिन्दू-धर्मानुयायी स्वच्छन्द और मनमाना आचरण करते हैं। इसी उदारताका अनुचित लाभ उठाकर हिन्दू-समुदायके लोग परिवार-नियोजनको अपनाकर थोड़े समयके लिये खुश हो रहे हैं। परंतु आगे चलकर इसके भयंकर दुष्परिणाम होंगे, जिनमेंसे कुछका वर्णन नीचे किया जा रहा है—

१-परिवार-नियोजनके कार्यक्रमको अधिकांशतः उच्च वर्ग, पढ़ा-लिखा बौद्धिक वर्ग तथा साधन-सम्पन्न धनी वर्ग विशेषरूपसे अपना रहा है, जबकि निम्न श्रेणीके मजदूर, गरीब और अनपढ़ लोग इसे नहीं अपना रहे हैं। इसका परिणाम यह होगा कि आगे चलकर पढ़े-लिखे बौद्धिक वर्गके लोगों एवं साधन-सम्पन्न लोगोंकी संख्या कम हो जायगी तथा निम्न श्रेणीके लोगोंकी संख्या अधिक हो जायगी। आज देशमें जो बड़े औद्योगिक घराने हैं, वे इतनी उन्नति इसलिये कर सके कि पैसा होनेके साथ-साथ उनके घरोंमें इन उद्योगोंको सँभालनेके लिये पर्याप्त सदस्य भी थे। इन उद्योगपतियोंने सिर्फ भारतमें ही नहीं, बल्कि पूरे विश्वमें अपने उद्योग स्थापित किये और अपनी क्षमताका डंका बजाया। अब इन घरानोंके लोग यदि परिवार-नियोजन अपनाते हैं तो वे अपने इतने बड़े आर्थिक साम्राज्यको सँभाल नहीं पायँगे और नये उद्योग भी नहीं लगा पायेंगे। उनके सीमित परिवारके लिये वर्तमान सम्पत्ति ही कई पीढ़ियोंके लिये पर्याप्त होगी। वे नये उद्योग लगानेके बजाय वर्तमान उद्योंगोंको भी सीमित करनेका प्रयास करेंगे। इसका नुकसान पूरे देशको उठाना पड़ेगा। अतः उच्च वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्गद्वारा परिवार-नियोजन अपनानेसे देशकी बौद्धिक सम्पदामें कमी आयगी तथा देशकी आर्थिक मजबूती देनेवाली रीढ़की हड्डी कमजोर हो जायगी। अतः देशहितमें उच्च वर्गको परिवार-नियोजन कतई नहीं अपनाना चाहिये।

२-आनेवाले ५० वर्षोंमें ही हिन्दू-समुदाय अल्पमतमें आ जायगा और अल्पसंख्यक-समुदाय बहुमतमें आकर हिन्दुस्तानकी सत्तापर पुनः काबिज हो जायगा; इसे कोई रोक नहीं सकेगा। वर्तमान समयमें भारतमें अल्पसंख्यकोंकी संख्या २० करोड़ अर्थात् कुल आवादीका २० प्रतिशत है। उनकी वृद्धिको देखते हुए थोड़े वर्षोंमें ही उनकी

आबादी ३० प्रतिशतसे अधिक हो जायगी। चूँकि हिन्दुस्तानमें अनेकों राजनैतिक पार्टियाँ हैं। अत: ३० प्रतिशत आबादीवाला वर्ग आसानीसे सत्तापर काबिज हो सकता है। एक बार सत्तामें आ जानेपर सेना और पुलिसमें इनका प्रभुत्व ३० प्रतिशत या इससे भी अधिक हो जायगा और यह निरन्तर बढ़ता रहेगा; क्योंकि नियोजित परिवारोंमें सेनामें भेजने-हेतु अतिरिक्त सदस्य होंगे ही नहीं तथा सेनामें भी जब उन्हींका प्रभुत्व होगा, तब भारतमें जनतन्त्र कायम रह सकेगा या नहीं, यह बात भी संदेहपूर्ण है। सम्भावना यही बनती है कि देशमें जनतन्त्र समाप्त होकर पूर्णतया अधिनायकवादी फौजी शासन कायम हो जायगा। ऐसी स्थिति पैदा न हो; इसके लिये देशवासियोंको अभीसे सोचना पड़ेगा और सख्त निर्णय लेकर उसपर अमल भी करना होगा।

३-देशके उत्तर-पूर्वी राज्योंमें हिन्दू-वर्ग बहुमतसे पिछड़कर अल्पमतमें आ चुका है। कश्मीरमें तो हिन्दुओंकी हालत अत्यन्त दयनीय है ही, जम्मूमें भी उनकी हालत खराब होती जा रही है। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आन्ध्रप्रदेश एवं कई दक्षिणी राज्योंके अनेक शहरोंमें हिन्दू-समुदाय कमजोर पड़ता जा रहा है। अल्पसंख्यकोंकी तेजीसे बढ़ती आबादीके कारण एक समय ऐसा भी आ सकता है जब उनका प्रभुत्व पूरे हिन्दुस्तानपर कायम हो जायेगा।

४-इतिहास गवाह है कि आजसे लगभग एक हजार वर्ष पूर्व कुछ विदेशी आक्रमणकारियोंने भारतपर आक्रमण करके अपनी बर्बरता, क्रूरता और कत्लेआमके बलपर, देशकी छोटी-छोटी रियासतोंके राजाओंकी आपसी फूटका फायदा उठाकर हिन्दुस्तानमें अपना शासन कायम कर लिया। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ते हुए करोड़ोंतक पहुँच गयी (इसमें धर्मान्तरण और उनकी जनसंख्या-वृद्धि दोनों कारण शामिल हैं)। इसका परिणाम यह हुआ कि आजादीके समय उन्होंने अपनी आबादीके अनुपातमें भारतके टुकड़े कराकर पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान अलगसे ले लिये। तात्पर्य यह कि भारतका एक बहुत बड़ा भू-भाग भारतसे छिन गया।

५-आजादीके बाद भारतमें लगभग तीन करोड़ अल्पसंख्यक बसे रह गये, जो बढ़ते-बढ़ते आज बीस करोड़तक पहुँच गये हैं अर्थात् पिछले पचास वर्षोंमें इनकी आबादी सात गुना बढ़ गयी। इस गतिसे अगले पचास वर्षोंमें इनकी आबादी आसानीसे सौ करोड़से ऊपर निकल जायगी; जबकि हिन्दू-समुदाय 'हम दो-हमारे दो' तथा 'हम दो-हमारे एक' के कपटपूर्ण एवं सुखी जीवनके लुभावने नारोंमें फँसकर अपनी आबादीको तेजीसे घटानेमें लगा हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप अगले पचास वर्षोंमें हिन्दू-समुदाय अल्पमत और अल्पसंख्यकोंकी गिनतीमें आ जायगा।

६-भारतमें जनसंख्या-वृद्धिकी दर वर्तमानमें दो प्रतिशत वार्षिक है, जिसे घटाकर सरकार एक प्रतिशत वार्षिक करना चाहती है। इसके अनुसार यदि भारतकी कुल जनसंख्याको सौ मानें तो स्थिति निम्नवत् होगी—

		वार्षिक वृद्धि	प्रतिशत वृद्धि
अल्पसंख्यक	२०	१	५
हिन्दू और अन्य	८०	१	१.२५
कुल	१००	२	

इस तालिकाके अनुसार अल्पसंख्यकोंकी वार्षिक वृद्धि बीसपर एक है, अर्थात् पाँच प्रतिशत वार्षिक है; जबकि हिन्दू और अन्यकी वृद्धि अस्सीपर एक है अर्थात् १.२५ प्रतिशत वार्षिक है। अब यदि सरकार कुल वार्षिक वृद्धिदरको दो प्रतिशतसे घटाकर एक प्रतिशत करना चाहती है तो हिन्दू और अन्य समुदायोंको अपनी वृद्धिदर शून्य करनी पड़ेगी; क्योंकि अल्पसंख्यक-समुदाय परिवार-नियोजन अपनानेको तैयार नहीं है। अतः उनकी पाँच प्रतिशत वार्षिक वृद्धिदरको सहन करना पड़ेगा और हिन्दुओंको अपनी वृद्धिदर शून्य प्रतिशत करनी पड़ेगी, तभी राष्ट्रीय वार्षिक वृद्धिदर एक प्रतिशतके लक्ष्यको प्राप्त किया जा सकता है। अगर ऐसा हुआ तो हिन्दू एवं अन्योंकी जनसंख्या अस्सी करोड़पर स्थिर हो जायगी, जबकि अल्पसंख्यक-समुदाय तेजीसे बढ़ते हुए पचास वर्षोंमें सौ करोड़से ऊपर निकल जायगा।

७-चूँकि नियोजित परिवारवालोंकी सदस्य-संख्या सीमित होती है, इसीलिये उन्हें वर्तमान आतंकवादी युगमें हर समय भय और आतंकके सायेमें डरते हुए जीना पड़ता है; क्योंकि एक नियोजित परिवारमें दो बच्चे, उनके माता-पिता और दादा-दादी—कुल छः सदस्य होते हुए भी लड़ाई लड़ सकनेवाला जवान आदमी एक ही होगा। वह भी लड़ाई लड़ेगा नहीं; क्योंकि वह सोचेगा कि अगर लड़ाईमें उसे कुछ हो गया तो उसके बच्चोंको, पत्नीको

और वृद्ध माता-पिताको कौन सँभालेगा? इसलिये उसे मजबूरन् हर स्थितिमें समझौता करके जीना पड़ेगा। दंगे-फसादकी स्थितिमें अधिकतर ये नियोजित परिवार ही दंगाइयोंकी लूटपाट, हत्या, अपहरण आदि दुर्व्यवहारोंके शिकार होते हैं। दूसरी तरफ अधिक संख्यावाले परिवारोंमें गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरीसे मरते लोगोंको लड़नेमें कोई दिक्कत नहीं होती। अतः ये ही लोग नियोजित परिवारोंको (जो अपेक्षाकृत सम्पन्न होंगे) लूटकर खा जायँगे। उनकी धन-दौलत, इज्जत-आबरू—सब कुछ खतरेमें पड़ जायगी और उनका परिवार-नियोजन उन्हींके लिये आत्मघाती बन जायगा, तब उनके पास रोनेके सिवा कुछ और नहीं बचेगा।

८-शास्त्रोंमें कहा गया है—'**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**' किंतु गर्भपात और भ्रूणहत्या कराकर वही जननी आज डाइन बनती जा रही है, ऐसी डाइन जो अपने ही बच्चोंका भक्षण कर लेती है, उन्हें मार डालती है। यानि '**मातृ देवो भव**' कहलानेवाली माँ आज डाइन कहलानेकी निकृष्टतम स्थितितक पहुँच गयी है और उसे इस बातका अफसोसतक नहीं है। परंतु इसमें अकेली स्त्रीका दोष नहीं है। पुरुष भी इसमें बराबरके दोषी हैं; क्योंकि वे उसे इसकी शिक्षा देते हैं, प्रेरित करते हैं और इसके लिये उसे मजबूर करते हैं। सोचनेकी बात है कि अगर कोई बाहरी आक्रमणकारी या देशके भीतरके आतंकवादी २५-५० हिन्दू-बच्चों अथवा आदमियोंकी हत्या कर देते हैं तो पूरे देशमें उनके खिलाफ रोष और क्रोध उपजेगा, उसकी निन्दा की जायगी, परंतु परिवार-नियोजन और गर्भपातके द्वारा पूरे देशमें रोजाना लाखों हिन्दू-बच्चोंकी हत्याएँ हो रही हैं अथवा उनका जन्म होनेसे रोका जा रहा है और इसको राष्ट्रीय उपलब्धि माना जा रहा है। वास्तवमें यह हिन्दुओंके संहार और कत्लेआमका अप्रत्यक्ष तरीका है। इसे देखकर हिन्दू-धर्मके विरोधी बहुत खुश हो रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि अब हिन्दुओंको मारनेके लिये उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। हिन्दू परिवार-नियोजनके द्वारा खुद ही अपना विनाश और सर्वनाश कर रहे हैं।

धरतीके सभी प्राणियोंमें मानवको सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। परंतु आश्चर्यकी बात है कि अन्य किसी भी प्राणीके लिये परिवार-नियोजन जैसी कोई कार्यवाही नहीं की जा रही है, बल्कि बहुत-से प्राणियोंको तो लुप्त होनेसे बचानेके लिये उन्हें कृत्रिम गर्भाधानद्वारा बढ़ाया जा रहा है; जबकि देव-दुर्लभ प्राणी—'मनुष्य' को गर्भपात एवं कृत्रिम साधनोंद्वारा सीमित किया जा रहा है। ऐसा क्यों? क्या आदमीको इस सृष्टिके रचयिता—परमपिता परमात्मापर भरोसा नहीं रहा? क्या वह सोचता है कि सृष्टिके समस्त जीवोंका भरण-पोषण उसकी अपनी योजनाओंसे हो रहा है? जो परमात्मा बच्चेके जन्मसे पहले ही उसके लिये दूधकी व्यवस्था करता है, रोटी खानेकी अवस्था आनेसे पहले ही दाँतोंकी व्यवस्था करता है—वही परमात्मा सभी प्राणियोंके खाने योग्य अनेक प्रकारके खाद्य पदार्थ भी देता है। उसी परमात्माने सृष्टिके निरन्तर संचालनके लिये सभी नर-मादा प्राणियोंके बीच यौनाचारमें आनन्दानुभूतिका अनुपम उपहार दिया है। यह कैसी विडम्बना है कि आजका मानव वह आनन्दानुभूति तो करना चाहता है, पर बच्चेकी जिम्मेदारी नहीं उठाना चाहता! ऐसा नहीं चलेगा। यदि संतान नहीं चाहिये तो संयमसे रहना होगा। वरना कृत्रिम साधनोंद्वारा प्रकृतिके विधानके साथ खिलवाड़ करना बहुत महँगा पड़ेगा। प्रकृति अपने नियमोंको तोड़नेकी अनुमति किसीको भी नहीं देती। यदि कोई ऐसा करता है तो उसे उसकी सजा भी भुगतनी पड़ती है।

कहनेको, आलोचक यह कह सकते हैं कि शहरों और महानगरोंमें तेजीसे जो जनसंख्या बढ़ रही है, उसका निराकरण कैसे होगा? तो इस सम्बन्धमें कहना है कि आज शहरोंमें तेजीसे जनसंख्या बढ़नेका मुख्य कारण यह है कि पिछले पचास वर्षोंमें जो औद्योगिक क्रान्ति हुई है और उसके अन्तर्गत कल-कारखानों एवं अन्य सुविधाओंका जो विस्तार हुआ है, वह अधिकांशतः शहरोंतक ही सीमित रहा है। गाँवोंमें रोजगारके साधनों और अन्य सुविधाओंका विस्तार होनेकी बजाय औद्योगिकीकरणके कारण उनके पुश्तैनी धन्धोंका ह्रास हुआ है। इसलिये गाँवोंकी आबादी लगातार शहरोंकी तरफ पलायन कर रही है। इसी कारण शहरोंमें भीड़ बढ़ रही है और गाँव सूने पड़े हैं।

शहरोंमें ज्यादा भीड़ होनेका एक कारण मनुष्यद्वारा ज्यादा उन्नति और आगे बढ़नेके लालचमें हरदम अनावश्यक भाग-दौड़में लगे रहना भी है। इसके कारण रेलों, बसों,

ट्रकों, जीपों, कारों, स्कूटरों एवं साइकिलों आदि वाहनोंकी संख्या मनुष्यसे भी ज्यादा बढ़ गयी है और इन वाहनोंकी भीड़ तथा उनके प्रदूषणने मनुष्यकी नाकमें दम कर रखा है। अत: समस्या आबादी बढ़नेकी नहीं है, बल्कि मूल समस्या मनुष्यके शान्तिपूर्वक न बैठनेकी है। शहरका आदमी सुबहसे लेकर आधी राततक चकरीकी तरह घूमता रहता है, इसलिये एक ही आदमी बीस आदमियों जितनी भीड़का अहसास करा देता है। इसलिये यदि भीड़से बचना है तो हर व्यक्तिको अनावश्यक भाग-दौड़ कम करना होगा और वाहनोंके निर्माण एवं उपयोगको भी कुछ हदतक नियन्त्रित करना पड़ेगा।

सारांश यह है कि शहरों एवं महानगरोंमें जनसंख्याकी समस्यासे निपटनेके लिये ग्रामीण इलाकोंमें ही छोटे-बड़े कल-कारखाने और अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी। शहरोंमें और अधिक कारखानोंकी स्थापनापर पाबन्दी लगानी होगी; तभी जनसंख्याका विकेन्द्रीयकरण होगा और शहरी भीड़-भाड़से मुक्ति मिलेगी। इसके विपरीत परिवार-नियोजन तथा गर्भपातद्वारा मनुष्यकी उत्पत्तिपर ही पाबन्दी लगाना तो वैसा ही है, जैसे आँखका दर्द मिटानेके लिये आँखको ही फोड़ देना अथवा किसी व्यक्तिद्वारा समस्याओंसे घबराकर आत्महत्या कर लेना। ऐसा करना समस्याका समाधान नहीं है, यह तो एक हताश और विक्षिप्त व्यक्तिकी आत्मघाती प्रतिक्रिया है। इसके अतिरिक्त किसी एक वर्गद्वारा परिवार-नियोजनको अपनाना और दूसरे वर्गद्वारा नहीं अपनाना तो और भी खतरनाक है। इससे जातिगत एवं वर्गगत असंतुलन उत्पन्न होगा, जो हिन्दुस्तानके प्राचीन मूल स्वरूपको ही नष्ट कर देगा।

अत: अगर हिन्दुस्तानको बचाना है तो हिन्दू-धर्मको बचाना होगा। इसके लिये हिन्दुओंको परिवार-नियोजन तथा गर्भपातके द्वारा स्वयं किये जानेवाले कत्लेआमको बंद करना होगा। अगर ऐसा नहीं किया गया तो कोई भी देवता, कोई भी शक्ति हिन्दुस्तानको नहीं बचा सकेगी। तब हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान न रहकर कोई और देश बन जायगा; क्योंकि आज बहुसंख्यक होकर भी जब हम हिन्दुस्तानमें हिन्दुओंकी रक्षा नहीं कर सकते तो अल्पसंख्यक हो जानेपर हमारी क्या दुर्दशा होगी? इसलिये सोचो, समझो और दूसरोंको भी समझाओ तथा हिन्दुस्तानको रसातलमें जानेसे बचाओ।

धर्मकी जय हो, अधर्मका नाश हो। सनातन धर्मकी जय हो।

साधनोपयोगी पत्र

भगवान्‌की वस्तु सदा भगवान्‌की सेवामें लगाते रहिये

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। इस समय तो उड़ीसा तथा देशके कुछ भागोंमें संकटकी स्थिति है; पर इस संकटके न होनेकी स्थितिमें भी भारतवर्षमें इतने गरीब हैं, जिनको भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढकनेको कपड़ा नहीं मिलता। दूध, चिकित्सा, आरामका घर आदि तो बहुत दूरकी बातें हैं। फिर आजकल भयंकर महँगीने तो मानो प्राणियोंपर राक्षसी धावा ही बोल दिया है। इस अवस्थामें जिनके पास जो कुछ भी साधन है, उसके द्वारा इन अभावग्रस्त प्राणियोंकी—अपने ही-जैसे प्राण-मनवाले मानवोंकी सेवा करनी चाहिये। यह धर्म है और इसकी उपेक्षा बहुत बड़ा पाप है।

सच तो यह है कि यहाँ कुछ भी किसीका नहीं है, सभी कुछ भगवान्‌का है और उसे यथासाध्य आवश्यकतानुसार प्राणिमात्रकी सेवाके द्वारा भगवान्‌की सेवामें लगाना है। वस्तुत: सभी प्राणी भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति हैं। अतएव इनकी सेवामें किसी वस्तुका अर्पण करना भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌की सेवामें लगानामात्र है। यह ईमानदारी है, कोई महत्त्वकी बात नहीं। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदजीके वाक्य हैं—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(७।१४।८)

अर्थात् जितनेसे अपना पेट भरे, उतनेपर ही मानवोंका अधिकार है। जो इससे अधिकपर अपना अधिकार मानता है, वह चोर है; उसे दण्ड मिलना चाहिये।

देवर्षि नारदजीके इन शब्दोंपर ध्यान दीजिये। हमारा

कुछ है ही नहीं। उदर-पोषणभरकी वस्तु स्वामीने हमें दी है। इससे अधिकको अपनी वस्तु मानना तो बेईमानी—चोरी है। हमें यदि भगवान्‌ने कोई वस्तु दी है तो वह इसी प्रकार दी है कि जैसे भला मालिक किसी सेवकको उसे ईमानदार मानकर अपनी वस्तु सँभालने तथा आवश्यकतानुसार अपनी सेवामें लगानेके लिये देता है, न कि उसे व्यर्थ खोने या अपनी मानकर यथेच्छ भोगनेके लिये। अतएव जहाँ-जहाँ जिस-जिस वस्तुका अभाव है, वहाँ-वहाँ भगवान् मानो अपनी उस-उस वस्तुको माँगते हैं और जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, उसे वहाँपर प्रसन्नचित्तसे देनी चाहिये।

जहाँ अन्नका अभाव है वहाँ भगवान् अन्न माँगते हैं; जहाँ जलका अभाव है, वहाँ जलकी इच्छा करते हैं; जहाँ वस्त्रका अभाव है, वहाँ वस्त्र चाहते हैं; जहाँ रोगीकी चिकित्सा या सेवाका अभाव है, वहाँ वे चिकित्सा और सेवाकी माँग करते हैं और जहाँ रहनेको स्थान नहीं है, वहाँ भगवान् स्थान चाहते हैं; इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी। अतएव जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, उस-उसको वह वस्तु जहाँ भगवान् उसे चाहते हैं—अवश्य देनी चाहिये।

जो लोग भगवान्‌की वस्तु समुचितरूपसे तथा नेकनीयतीसे भगवान्‌की सेवामें न लगाकर स्वयं भोगते हैं, वे भगवान्‌के साथ बेईमानी तथा धोखेबाजी करते हैं। इसके परिणाममें वे दण्डके भागी होंगे ही। आज चाहे वे इस बातको न मानें, न परवा करें। जहाँ लाखों-करोड़ों अपने ही-जैसे बहिन-भाइयोंको भरपेट रूखा-सूखा अन्न भी नहीं मिलता, वहीं कुछ लोगोंको बढ़िया-बढ़िया मेवा-मिठाई आदि खाने, व्यर्थ खोने या अपने ही लिये सुरक्षित अन्नादि जमा रखनेका क्या अधिकार है? जहाँ लाखों-करोड़ों बहिनें तन ढकनेके लिये एक मोटी साड़ी भी नहीं पातीं, वहाँ कुछ बहिनोंका पाँच-पाँच सौ, हजार-हजारकी एक-एक साड़ी पहनना पाप नहीं तो और क्या है? जहाँ लाखों-करोड़ों भाइयोंको धोतीके सिवा और कोई कपड़ा नहीं मिलता, वहाँ कुछ भाइयोंको बढ़िया कपड़े, सैकड़ों रुपये सिलाई देकर सूट बनवाने-पहननेका और पेटियोंमें संग्रह कर रखनेका कार्य वस्तुतः असत्कार्य या घोर पाप ही तो है! अतएव मेरी प्रार्थना तो सबसे यही है कि अपने जीवनको सादा बनायें; फैशन, विलासिता तथा फिजूलखर्चीका त्याग करें। अनावश्यक आवश्यकताओंको न बढ़ायें, थोड़ेमें ही अपना काम चलायें तथा शेष सबको भगवान्‌की वस्तु मानकर भगवान्‌की सेवामें लगाते रहें। संग्रह तो रखना ही नहीं चाहिये। अधिक वस्त्रोंका—वस्तुओंका संग्रह होगा और मरते समय यदि उनमें मन रह जायगा तो उन्हीं वस्तुओंमें कोई कीड़ा बनकर रहना पड़ेगा। बहुत कीमती कपड़े नहीं पहनने चाहिये। जो भाई हजार-दो-हजारका एक सूट पहनते हैं, वे सौ-दो-सौका पहनें और बचे हुए रुपयोंकी धोतियाँ खरीदकर उन लोगोंको दे दें, जिनके पास धोती नहीं है और जो उसको जुटानेमें असमर्थ हैं। इसी प्रकार एक हजारकी साड़ी पहननेवाली बहिन सौ-दो-सौकी साड़ी पहन ले और शेष नौ सौकी दस-बारह साड़ियाँ खरीदकर उन बहिनोंके तन ढक दे; जिनके पास साड़ीका अभाव है। इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी।

संकटकालके समय तो ऐसा करना विशेष कर्तव्य है। वैसे जीवनमें सदा ही ऐसा व्यवहार करना चाहिये। और जिनके पास बहुत अधिक साधन हैं तथा जो बहुत कमाते हैं, उन्हें तो अपने सभी साधनोंको अभिमानरहित होकर भगवान्‌की सेवामें लगाते रहना चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि भगवान् अपनी वस्तु अपनी सेवामें स्वीकार कर रहे हैं—यह उनकी कृपा है। इसमें न तो अभिमानकी बात है, न किसी प्रकारसे किसीपर अहसान करनेकी। अपनेको उपकार करनेवाला, दयालु, दाता और लेनेवालोंको उपकारके पात्र, दीन, भिक्षुक न मानकर यही मानना चाहिये कि 'भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के इच्छानुसार भगवान्‌की सेवामें लगी है। भगवान्‌ने ही उसे ग्रहण किया, मेरा इसमें क्या है? मुझसे भगवान्‌ने इस कार्यमें सेवा ली, यह भगवान्‌की कृपा और मेरा सौभाग्य है।'

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

एक उदार दाता भक्त सदा संकोचसे भरे दान देते समय भी नेत्रोंको झुकाये रखते थे। किसीके पूछनेपर उन्होंने नेत्र नीचे रखनेका कारण बताया—

देनहार कोउ और है देत रहत दिन-रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, यासो नीचे नैन॥

शेष भगवत्कृपा।

हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये—शिखा (चोटी)-धारणकी आवश्यकता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हिन्दू-संस्कृति बहुत विलक्षण है। इसमें छोटी-से-छोटी अथवा बड़ी-से-बड़ी प्रत्येक बातका धर्मके साथ सम्बन्ध है और धर्मका सम्बन्ध कल्याणके साथ है। हिन्दू-धर्ममें जो-जो नियम बताये गये हैं, वे सब-के-सब नियम मनुष्यके कल्याणके साथ सम्बन्ध रखते हैं। कोई परम्परासे सम्बन्ध रखते हैं, कोई साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं। हिन्दू-धर्ममें विद्याध्ययनका भी सम्बन्ध कल्याणके साथ है। संस्कृत-व्याकरण भी एक दर्शनशास्त्र है, जिससे परिणाममें परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिये हिन्दू-धर्मके किसी नियमका त्याग करना वास्तवमें अपने कल्याणका त्याग करना है।

जैसे, घड़ीमें छोटे-बड़े अनेक पुर्जे होते हैं। उसमें बड़े पुर्जेका जो महत्त्व है, वही महत्त्व छोटे पुर्जेका भी है। बड़ा पुर्जा अपनी जगह पूरा है और छोटा पुर्जा अपनी जगह पूरा है। छोटे-से-छोटा पुर्जा भी यदि निकाल दिया जाय तो घड़ी बन्द हो जायगी। इसी तरह हिन्दू-धर्मकी छोटी-से-छोटी बात भी अपनी जगह पूरी है और कल्याण करनेमें सहायक है। छोटी-सी शिखा अर्थात् चोटी भी अपनी जगह पूरी है और मनुष्यके कल्याणमें सहायक है। शिखाका त्याग करना मानो अपने कल्याणका त्याग करना है।

जैसे घड़ीके छोटे पुर्जेकी जगह बड़ा पुर्जा काम नहीं कर सकता, ऐसे ही हम कोई भी काम करें, उसमें अगर थोड़ी-सी भी कमी रह जायगी तो उसकी पूर्ति नहीं होगी। महाराज नलके चरित्रमें आता है कि कलियुग कई दिनोंतक उनके शरीरमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करता रहा, पर प्रवेश कर नहीं सका। एक दिन महाराज नलने लघुशंका करके हाथ तो धो लिये, पर पैर नहीं धोये तो उसी दिन कलियुग उनके भीतर प्रवेश कर गया। फलस्वरूप महाराज नल और उनकी पत्नी दमयन्ती—दोनोंको बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। अतः शिखा नहीं रखना बड़ी भारी कमी है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती।

शिखा अर्थात् चोटी हिन्दुओंका प्रधान चिह्न है। हिन्दुओंमें चोटी रखनेकी परम्परा प्राचीनकालसे चली आ रही है। परंतु अब आपने इसका त्याग कर दिया है—यह बड़े भारी नुकसानकी बात है। विचार करें, चोटी न रखनेके लिये अथवा चोटी काटनेके लिये किसीने प्रचार भी नहीं किया, किसीने आपसे कहा भी नहीं, आपको आज्ञा भी नहीं दी, फिर भी आपने चोटी काट ली तो आप मानो कलियुगके अनुयायी बन गये। यह कलियुगका प्रभाव है; क्योंकि उसे सबको नरकोंमें ले जाना है। चोटी कट जानेसे नरकोंमें जाना सुगम हो जायगा। इसलिये आपसे प्रार्थना है कि चोटीको साधारण समझकर इसकी उपेक्षा न करें। चोटी रखना मामूली दीखता है, पर यह मामूली काम नहीं है।

अग्निका एक नाम 'शिखी' है। शिखी उसको कहा जाता है, जिसकी शिखा हो— **'शिखा यस्यास्तीति स शिखी।'** वह धूमशिखावाला अग्नि हमारा इष्टदेव है— **'अग्निर्देवो द्विजातीनाम्'**। अतः शिखा हमारे इष्टदेव (अग्नि)-का प्रतीक है।

हरिवंशपुराणमें एक कथा आती है। हैहय और तालजंघ वंशके राजाओंने शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओंको साथ लेकर राजा बाहुका राज्य छीन लिया। राजा बाहु अपनी पत्नीके साथ वनमें चला गया। वहाँ राजा बाहुकी मृत्यु हो गयी। तब महर्षि और्वने उसकी गर्भवती स्त्रीकी रक्षा की और वे उसको अपने आश्रममें ले आये। वहाँ उसने एक पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर राजा सगरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा सगरने महर्षि और्वसे शस्त्र और शास्त्रकी विद्या सीखी। समय पाकर राजा सगरने हैहयोंको मार डाला और फिर शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओंको भी मारनेका निश्चय किया। वे शक, यवन आदि राजालोग महर्षि वसिष्ठकी शरणमें चले गये। वसिष्ठजीने कुछ शर्तोंपर उनको अभयदान दे दिया और राजा सगरको आज्ञा दी कि वे उनको न मारें। राजा सगर अपनी प्रतिज्ञा भी नहीं छोड़ सकते थे और वसिष्ठजीकी आज्ञा भी नहीं टाल सकते थे। अतः उन्होंने उन राजाओंका सिर शिखासहित मुँड़वाकर उनको छोड़ दिया। वे राजालोग क्षत्रिय थे, पर शिखा कटनेके कारण वे सब धर्मभ्रष्ट हो गये—

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।
कोलिसर्पाः समहिषा दार्द्याश्चोलाः सकेरलाः॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनाद् राजन् सगरेण महात्मना॥

(हरिवंशपुराण, हरिवंश० १४। १८-१९)

'शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोलिसर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल—ये सब क्षत्रिय ही थे। वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने इनके धर्मको ही नष्ट कर दिया।'

इस कथासे यह सिद्ध होता है कि शिखा काटनेसे मनुष्य मरे हुएके समान हो जाता है और अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। प्राचीनकालमें किसीकी शिखा काट देना मृत्युदण्डके समान माना जाता था। धर्मके साथ शिखाका अटूट सम्बन्ध है। इसलिये शिखा काटनेपर मनुष्य धर्मच्युत हो जाता है। बड़े दुःखकी बात है कि आज हिन्दूलोग मुसलमानों-ईसाइयोंके प्रभावमें आकर अपने हाथों अपनी शिखा काट रहे हैं। खुद अपने धर्मका नाश कर रहे हैं। यह हमारी गुलामीकी पहचान है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(१६। २३-२४)

'जो मनुष्य शास्त्रविधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरणकी शुद्धि)-को, न सुख (शान्ति)-को और न परमगतिको ही प्राप्त होता है।'

'अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है—ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधिके अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।'

चोटी रखना शास्त्रका विधान है। चाहे सुख मिले या दुःख मिले, हमें तो शास्त्रके विधानके अनुसार चलना है। भगवान् जो कहते हैं, संत-महापुरुष जो कहते हैं, शास्त्र जो कहते हैं, उसके अनुसार चलनेमें ही हमारा वास्तविक हित है। भगवान् और उनके भक्त—ये दोनों ही निःस्वार्थ-भावसे सबका हित करनेवाले हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस, उत्तर० ४७। ३)

इसलिये इनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाला लोक और परलोक दोनोंमें सुख पाता है।

एक कहानी है। एक बनजारा था। वह बैलोंपर मेट (मुल्तानी मिट्टी) लादकर दिल्लीकी तरफ आ रहा था। रास्तेमें कई गाँवोंसे गुजरते समय उसकी बहुत-सी मेट बिक गयी। बैलोंकी पीठपर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलोंकी पीठपर टिकें कैसे? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरोंने पूछा कि क्या करें? बनजारा बोला—'अरे! सोचते क्या हो, बोरोंके एक तरफ रेत (बालू) भर लो। यह राजस्थानकी जमीन है, यहाँ रेत बहुत है।' नौकरोंने वैसा ही किया। बैलोंकी पीठपर एक तरफ आधे बोरेमें मेट हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरेमें रेत हो गयी।

दिल्लीसे एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलोंपर लदे बोरोंमेंसे एक तरफ रेत झरते हुए देखा तो वे बोले कि बोरोंमें एक तरफ रेत क्यों भरी है? नौकरोंने कहा—संतुलन करनेके लिये। वे सज्जन बोले—'अरे! यह तुम क्या मूर्खता करते हो? तुम्हारा मालिक और तुम एक-से ही हो। बैलोंपर मुफ्तमें ही भार ढोकर उनको मार रहे हो? मेटके आधे-आधे दो बोरोंको एक ही जगह बाँध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भारके खुले चलेंगे।' नौकरोंने कहा कि आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। तुम जाकर हमारे मालिकसे यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बनजारे)-से मिला और उससे बात कही। बनजारेने पूछा कि आप कहाँके हैं? कहाँ जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं भिवानीका रहनेवाला हूँ। रुपये कमानेके लिये दिल्ली गया था। कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। व्यापारमें घाटा लग गया। पासमें कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिये। उसकी बात सुनकर बनजारा नौकरोंसे बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चलते हैं, वैसे ही चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दीखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता। अगर ठीक निकलता तो ये धनवान् हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दीखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काममें घाटा नहीं खाया।

बनजारा अपने बैलोंको लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने जमीन खरीदकर मेट और रेत दोनोंका अलग-अलग ढेर लगा दिया और नौकरोंसे कहा कि बैलोंको जंगलमें ले जाओ

और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे? मेट बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्लीका बादशाह बीमार हो गया। वैद्यने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थानके धोरे (रेतके टीले)-पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेतमें मनुष्यको नीरोग करनेकी शक्ति होती है। अत: बादशाहको राजस्थान भेजो।

'राजस्थान क्यों भेजो? वहाँकी रेत यहीं मँगा लो।'

'ठीक है, मँगा लेते हैं। रेत लानेके लिये ऊँट भेजो।'

'ऊँट क्यों भेजें? यहीं बाजारमें रेत मिल जायगी।'

'बाजारमें कैसे मिल जायगी?'

'अरे! दिल्लीका बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेतका ढेर लगा हुआ देखा है।'

'अच्छा! फिर जल्दी रेत मँगा लो।'

बादशाहके आदमियोंने जाकर बनजारेसे पूछा कि रेत क्या भाव है? वह बोला कि चाहे मेट खरीदो, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलोंपर बराबर तुलकर आये हैं। बादशाहके आदमियोंने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बनजारा दिल्लीसे आये उस सज्जनकी बात मानता तो ये मुफ्तके रुपये कैसे मिलते? इससे सिद्ध हुआ कि बनजारेकी बुद्धि ठीक काम करती थी।

इस कहानीसे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जिन्होंने अपनी उन्नति कर ली है, जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्त्वकी प्राप्ति हो गयी है, ऐसे संत-महात्माओंकी बात मान लेनी चाहिये; क्योंकि उनकी बुद्धिका नतीजा अच्छा हुआ है। उनकी बात माननेमें ही हमारा लाभ है। अपनी बुद्धिसे अबतक हमने कितनी उन्नति की है? क्या तत्त्वकी प्राप्ति कर ली है? इसलिये भगवान्, शास्त्र और संतोंकी बात मानकर शिखा धारण कर लेनी चाहिये। अगर उनकी बात समझमें न आये तो भी मान लेनी चाहिये। हमने आजतक अपनी समझसे काम किया तो कितना लाभ लिया? जैसे, किसीने व्यापारमें बहुत धन कमाया हो तो वह जैसा कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें लाभ क्यों नहीं होगा? ऐसे ही जिन संत-महात्माओंने परमात्मप्राप्ति कर ली है; अशान्ति, दु:ख, संताप आदिको मिटा दिया है, उनकी बात मानेंगे तो हमारेको भी अवश्य लाभ होगा।

मैं चोटी रखनेकी बात कहता हूँ तो आपके अहितके लिये नहीं कहता हूँ। आपको दु:ख हो जाय, नुकसान हो जाय, संताप हो जाय—ऐसा मेरा बिलकुल उद्देश्य नहीं है। मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। आपके लोक और परलोक दोनों सुधर जायँ, ऐसी बात कहता हूँ। वही बात कहता हूँ, जो पीढ़ियोंसे आपकी वंश-परम्परामें चली आयी है। एक चोटी रखनेसे आपका क्या नुकसान होता है? आपको क्या दोष लगता है? क्या पाप लगता है? आपके जीवनमें क्या अड़चन आती है? चोटी रखनेकी जो परम्परा सदासे थी, उसका त्याग आपने किसके कहनेसे कर दिया? किस संतके कहनेसे, किस पुराणके कहनेसे, किस शास्त्रकी आज्ञासे, किस वेदकी आज्ञासे आपने चोटी रखना छोड़ दिया?

चोटी रखना बहुत सुगम काम है, पर आपके लिये कठिन हो रहा है; क्योंकि आपने उसको छोड़ दिया है। यह बात आपकी पीढ़ियोंसे है। आपके बाप, दादा, परदादा आदि सब परम्परासे चोटी रखते आये हैं, पर अब आपने इसका त्याग कर दिया है, इसलिये अब आपको चोटी रखनेमें कठिनता हो रही है। विचार करें, चोटी रखना छोड़ देनेसे आपको क्या लाभ हुआ? और अब आप चोटी रख लें तो क्या नुकसान होगा? चोटी रखनेसे आपको पैसोंकी हानि होती हो, धर्मकी हानि होती हो, स्वास्थ्यकी हानि होती हो, आपको बड़ा भारी दु:ख मिलता हो तो बतायें। चोटी न रखनेमें लाभ तो कोई-सा भी नहीं है, पर हानि बड़ी भारी है। चोटीके बिना आपका देवपूजन तथा श्राद्ध-तर्पण निष्फल हो जाता है, आपके दान-पुण्य आदि सब शुभ-कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिये चोटीको मामूली समझकर इसकी उपेक्षा न करें।

पहले सब लोग चोटी रखते थे। चोटीके बिना कोई आदमी नहीं दीखता था। पर हमारे देखते-देखते थोड़े वर्षोंमें आदमी शिखारहित हो गये। अब प्राय: लोगोंकी शिखा नहीं दीखती। शिखा और सूत्र (जनेऊ)-का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आश्चर्यकी बात है कि आज ऐसे लोग भी हैं, जिनका सूत्र तो है, पर शिखा नहीं है। यह कितने पतनकी बात है। अगर यही दशा रही तो आगे आपको कौन कहेगा कि चोटी रखो? और क्यों कहेगा? कहनेसे उसको क्या लाभ?

शिखा हिन्दुत्वकी पहचान है। यह आपकी जातिकी रक्षा करनेवाली है। जनेऊ तो सबके लिये नहीं है, केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके लिये है, पर शिखा हिन्दूमात्रके

लिये है। चाहे द्विजाति हो, चाहे अन्त्यज हो, शिखा सबके लिये है। जैसे मुसलमानोंके लिये सुन्नत है, ऐसे ही हिन्दुओंके लिये शिखा है। सुन्नतके बिना कोई मुसलमान नहीं मिलेगा, पर शिखाके बिना आज हिन्दुओंका समुदाय-का-समुदाय मिल जायगा। मुसलमान और ईसाई बड़े जोरोंसे अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं और हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन करनेकी नयी-नयी योजनाएँ बना रहे हैं। आपने अपनी चोटी कटवाकर उनके प्रचार-कार्यको सुगम बना दिया है। इसलिये समय रहते हिन्दुओंको सावधान हो जाना चाहिये। मुसलमान अपने धर्मका प्रचार मूर्खतासे करते हैं और ईसाई बुद्धिमत्तासे। मुसलमान तो तलवारके जोरसे जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन करते हैं, पर ईसाई बाहरसे सेवा करके भीतर-ही-भीतर (गुप्त रीतिसे) धर्म-परिवर्तन करते हैं। वे स्कूल खोलते हैं और उनमें बालकोंपर अपने धर्मके संस्कार डालते हैं। इसीका परिणाम है कि घर बैठे-बैठे हिन्दुओंने अपनी चोटीका त्याग कर दिया। इस काममें ईसाई सफल हो गये। मुसलमानों और ईसाइयोंका उद्देश्य मनुष्यमात्रका कल्याण करना नहीं है, प्रत्युत अपनी संख्या बढ़ाना है, जिससे उनका राज्य हो जाय। कलियुगका प्रभाव प्रतिवर्ष, प्रतिमास, प्रतिदिन जोरोंसे बढ़ रहा है। लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। मनुष्यमात्रका कल्याण चाहनेवाली हिन्दू-संस्कृति नष्ट हो रही है। हिन्दू स्वयं ही अपनी संस्कृतिका नाश करेंगे तो रक्षा कौन करेगा?

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—चोटी रखनेसे क्या लाभ होगा?

उत्तर—जो लाभको देखता है, वह पारमार्थिक उन्नति कर सकता ही नहीं। लाभ देखकर ही कोई काम करोगे तो फिर शास्त्रवचनका, संत-वचनका क्या आदर हुआ? उनकी क्या इज्जत हुई? अपने लाभके लिये, अपना मतलब सिद्ध करनेके लिये तो पशु-पक्षी भी कार्य करते हैं। यह मनुष्यपना नहीं है। चोटी रखनेमें आपकी भलाई है—इसमें मेरेको रत्तीमात्र भी संदेह नहीं है। वास्तवमें हमें लाभ-हानिको न देखकर धर्मको देखना है। धर्मशास्त्रमें आया है कि बिना शिखाके जो भी यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि शुभकर्म किये जाते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति १।४)

इतना ही नहीं, शिखाके बिना किये गये वे पुण्यकर्म राक्षस-कर्म हो जाते हैं—

विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फला क्रियाः॥

(व्यास)

इसलिये धर्मशास्त्रने आज्ञा दी है—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

'स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या और देवपूजनके समय शिखामें ग्रन्थि (चोटीमें गाँठ) अवश्य लगानी चाहिये—ऐसा महाराज मनुने कहा है।'

हिन्दू-धर्मके सोलह संस्कारोंमें 'चूड़ाकरण-संस्कार' (मुण्डन-संस्कार)-का भी विशेष महत्त्व है। इस संस्कारमें शिखा धारण करनेसे दीर्घ आयु, तेज, बल और ओजकी प्राप्ति होती है—

दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट्।

शिखाके विशेष महत्त्वके कारण ही हिन्दुओंने यवन-शासनमें अपनी शिखाकी रक्षाके लिये सिर कटवा दिया, पर शिखा नहीं कटवायी। कितने दुःखकी बात है कि आज हिन्दू उसी शिखाको अपने ही हाथों काट रहे हैं! धर्मशास्त्रमें शिखा न रखनेका प्रायश्चित्त बताया गया है—

शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(लघुहारीत)

'तीनों वर्णोंके जो द्विजातिलोग मोहसे, द्वेषसे अथवा अज्ञानसे अपनी शिखा काट देते हैं, वे तप्तकृच्छ्र-व्रत करनेसे शुद्ध होते हैं।'

अथ चेत् प्रमादान्निशिखं वपनं स्यात् तत्र कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपरि आशिखाबन्धादवतिष्ठेत्॥

(काठकगृह्यसूत्र)

'यदि कोई मनुष्य प्रमादवश शिखासहित क्षौर (हजामत) करा ले तो वह ब्रह्मग्रन्थियुक्त कुशाकी शिखा बनाकर दाहिने कानपर तबतक रखे, जबतक बाँधनेयोग्य शिखा न बढ़ जाय।'

यदि सत्तर वर्षकी अवस्थाके बाद (वृद्धावस्थामें) बाल झड़ जानेके कारण शिखा न रहे तो यथासम्भव चारों ओर बचे हुए बालोंसे शिखा बनाकर नित्यकर्म करता रहे। यदि बाल बिलकुल न हों तो कुशा आदिकी शिखा रखकर

नित्यकर्म करे, पर शिखाशून्य कभी न रहे—

सप्तत्यूर्ध्वं तु चेत्तस्याः पूर्वतः पृष्ठतोऽपि वा।
पार्श्वतः परितो वापि समुद्भूतैश्च रोमभिः॥
शिखा कार्या प्रयत्नेन न चेन्नैवोपपद्यते।
तत्स्थाने सर्वशून्ये तु परितो वापि किं पुनः॥
ब्राह्मण्यसूचनायैवं तानि लोमानि धारयेत्।
अन्यथा न भवेदेव तथा तस्मात्समाचरेत्॥

(आंगिरसस्मृति ६१—६३)

'अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद्' (वाराणसी)-ने शिखा रखनेके निम्न लाभ बताये हैं—

(१) शिखा रखने तथा उसके नियमोंका यथावत् पालन करनेसे मनुष्यको सद्बुद्धि, सद्विचार आदिकी प्राप्ति होती है।

(२) शिखा रखनेसे आत्मशक्ति प्रबल बनी रहती है।

(३) शिखा रखनेसे मनुष्य धार्मिक, सात्त्विक और संयमी बनता है।

(४) शिखा रखनेसे मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक समस्त कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है।

(५) शिखा रखनेसे मनुष्य प्राणायाम, अष्टाङ्गयोग आदि यौगिक क्रियाओंको ठीक-ठीक कर सकता है।

(६) शिखा रखनेसे सभी देवता मनुष्यकी रक्षा करते हैं।

(७) शिखा रखनेसे मनुष्यकी नेत्रज्योति सुरक्षित रहती है।

(८) शिखा रखनेसे मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घायु होता है।

प्रश्न—चोटी रखनेसे शर्म आती है, वह कैसे छूटे?

उत्तर—आश्चर्यकी बात है कि व्यापार आदिमें बेईमानी, झूठ-कपट करनेमें शर्म नहीं आती, गर्भपात आदि पाप करनेमें शर्म नहीं आती, चोरी, विश्वासघात आदि करते समय शर्म नहीं आती, पर चोटी रखनेमें शर्म आती है। आपकी शर्म ठीक है या भगवान् और संतोंकी बात मानना, उनको प्रसन्न करना ठीक है? आप चोटी रखो तो आरम्भमें शर्म आयेगी, पर पीछे सब ठीक हो जायगा।

प्रश्न—चोटी देखकर लोग हँसी उड़ाते हैं, कैसे बचें?

उत्तर—लोग हँसी उड़ायें, पागल कहें तो उसको सह लो, पर धर्मका त्याग मत करो। आपका धर्म आपके साथ चलेगा, हँसी-दिल्लगी आपके साथ नहीं चलेगी। लोगोंकी हँसीसे आप डरो मत। लोग पहले हँसी उड़ायेंगे, पर बादमें आदर करने लगेंगे कि यह अपने धर्मका पक्का आदमी है। एक शंकरानन्द नामके हमारे प्रेमी सज्जन थे। वे बहुत पढ़े-लिखे थे। उन्होंने मेरेको बताया कि मैं पढ़नेके लिये जर्मनी गया। वहाँ मैं धोती पहना करता था। मेरी वेश-भूषा देखकर पहले तो वहाँके लोगोंने मेरी हँसी उड़ाई, पर बादमें सब मेरा विशेष आदर करने लग गये कि यह ईमानदार आदमी है, सच्चा धर्मात्मा आदमी है। इसलिये अपने धर्मका पालन निधड़क होकर करो, इसमें डर किस बातका?

एक कहानी है। एक आदमीकी किसी कारणसे नाक कट गयी। उसके साथीने पूछा तो वह बोला कि दोनों आँखोंके बीचमें नाक आड़े आती है, इसलिये ब्रह्मके दर्शन नहीं होते। अगर बीचमें नाक न रहे तो दोनों आँखोंकी दृष्टि मिलनेसे साक्षात् ब्रह्मके दर्शन होते हैं। ऐसा सुनकर उसके साथीने भी अपनी नाक कटवा ली। जब उसको ब्रह्मके दर्शन नहीं हुए तो उसने साथीसे कहा कि नाक कटवानेसे मेरेको तो दर्शन नहीं हुए? वह साथी बोला—'चुप रह, हल्ला मत कर! तेरेसे कोई पूछे तो यही कहना कि मेरेको ब्रह्मके दर्शन होते हैं।' धीरे-धीरे यह बात फैलती गयी। दूसरोंके कहनेसे, एक-दूसरेको देखकर नाक तो सबने कटवा ली, पर ब्रह्मके दर्शन किसीको नहीं हुए। एक पूरा समुदाय कटी नाकका हो गया। अब कोई नाकवाला आदमी उनके बीच आता तो वे सब मिलकर उसकी हँसी उड़ाते कि देखो, नक्कू आ गया! नक्कू आ गया!! इसी तरह चोटीकटिया लोग आज चोटीवालेकी हँसी उड़ाते हैं। अतः उनकी हँसीकी परवा न करके अपने धर्मका पालन करना चाहिये।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(महाभारत, स्वर्गा० ५।६३)

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु (राग) अनित्य है।'

व्रतोत्सव-पर्व

श्रावण कृष्णपक्ष (१७-७-२००० से ३१-७-२००० तक) सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	सोम	उ०षा०	१७ जुलाई	श्रावण-सोमवारव्रत (प्रदोषव्रतकी तरह करना चाहिये), सायं उमा-महेश्वर-पूजन एवं रुद्राभिषेक करना, श्रावणमासमें शाक-त्याग, मनसापूजा आरम्भ (बंगाल)
द्वितीया	भौम	श्रवण	१८ ,,	अशून्यशयनव्रत (चन्द्रोदय रात्रि ८-१४ बजे), लक्ष्मी-विष्णु-पूजन, दुर्गादर्शन, गौरीपूजन, हनुमान्-दर्शन, द्विपुष्करयोग दिन ४-४० बजेसे रात्रि ९-५५ बजेतक, पञ्चक आरम्भ दिन ४-४० बजेसे
तृतीया	बुध	धनिष्ठा	१९ ,,	कुम्भके चन्द्रमा प्रातः ५-४३ बजे, भद्रा दिन १०-३६ बजेसे रात्रि ११-१७ बजेतक
चतुर्थी	गुरु	शतभिषा	२० ,,	श्रीगणेशचतुर्थीव्रत (चन्द्रोदय रात्रि ९-३१ बजे), पुष्यके सूर्यकी संक्रान्ति प्रातः ५-५९ बजे (सामान्य वृष्टियोग)
पञ्चमी	शुक्र	पू०भा०	२१ ,,	मीनके चन्द्रमा दिन ३-१९ बजे
षष्ठी	शनि	उ०भा०	२२ ,,	सायन सिंहके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि शेष ५-१३ बजे, भद्रा रात्रि १२-३६ बजेसे
सप्तमी	रवि	रेवती	२३ ,,	भद्रा दिन १२-१८ बजेतक, मेषके चन्द्रमा रात्रि १०-३० बजे, भानुसप्तमी (उड़ीसा), श्रीलोकमान्य तिलक-जयन्ती, पञ्चक समाप्त रात्रि १०-३० बजे
अष्टमी	सोम	अश्विनी	२४ ,,	श्रावण-सोमवारव्रत (प्रदोषव्रतकी तरह)
नवमी	भौम	भरणी	२५ ,,	वृषके चन्द्रमा रात्रि ३-१८ बजे, भौमव्रत, गौरीपूजा, दुर्गायात्रा, हनुमान्-दर्शन
दशमी	बुध	कृत्तिका	२६ ,,	भद्रा दिन ८-३७ बजेसे रात्रि ७-४३ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग
एकादशी	गुरु	रोहिणी	२७ ,,	कामदा एकादशीव्रत (सबका)
द्वादशी	शुक्र	मृगशिरा	२८ ,,	मिथुनके चन्द्रमा प्रातः ६-३० बजे, प्रदोषव्रत
त्रयोदशी	शनि	आर्द्रा	२९ ,,	मासशिवरात्रिव्रत, भद्रा दिन १२-५५ बजेसे रात्रि ११-३९ बजेतक
चतुर्दशी	रवि	पुनर्वसु	३० ,,	कर्कके चन्द्रमा दिन ८-५१ बजे, श्राद्धकी अमावास्या
अमावास्या	सोम	पुष्य	३१ ,,	सोमवती अमावास्या स्नान-दानकी दिन ७-५८ बजेतक, श्रावण-सोमवारव्रत, सर्वार्थसिद्धियोग

श्रावण शुक्लपक्ष (१-८-२००० से १५-८-२००० तक) सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनाङ्क	व्रतोत्सव-पर्व
प्रतिपदा	भौम	अश्लेषा	१ अगस्त	चन्द्रदर्शन, सिंहके चन्द्रमा दिन ११-१९ बजे, धर्मसम्राट् स्वामिकरपात्रि-जयन्ती, भौमव्रत, गौरीपूजा, दुर्गायात्रा, हनुमान्-दर्शन (प्रतिपदा तिथि प्रातः ५-३९ बजेतक तदुपरि द्वितीया तिथि रात्रि शेष ३-२९ बजेतक)
द्वितीया	द्वितीया तिथिका क्षय			
तृतीया	बुध	मघा	२ ,,	मधुश्रवा तीज, ठकुराईन-जयन्ती, स्वर्णगौरीव्रत
चतुर्थी	गुरु	पू०फा०	३ ,,	कन्याके चन्द्रमा दिन २-५० बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, अश्लेषाके सूर्यकी संक्रान्ति प्रातः ६-२० बजे (सामान्य वृष्टियोग), भद्रा दिन १२-४८ बजेसे रात्रि १२-०१ बजेतक
पञ्चमी	शुक्र	उ०फा०	४ ,,	श्रीनागपञ्चमी, तक्षक-पूजन, काश्यां नागकूपयात्रा
षष्ठी	शनि	हस्त	५ ,,	तुलाके चन्द्रमा रात्रि ८-०९ बजे, कल्कि अवतार षष्ठी (सायं)
सप्तमी	रवि	चित्रा	६ ,,	भानुसप्तमी, गोस्वामी तुलसीदास-जयन्ती, मनसापूजा समाप्त (बंगाल), द्विपुष्करयोग दिन ८-१५ बजेतक, भद्रा रात्रि ९-५२ बजेसे
अष्टमी	सोम	स्वाती	७ ,,	भद्रा दिन १०-०१ बजेतक, श्रावण-सोमवारव्रत, विन्ध्याचल माताकी अष्टमीकी जोत जगाना
नवमी	भौम	विशाखा	८ ,,	भौमव्रत, गौरीपूजा, दुर्गायात्रा, हनुमान्-दर्शन
दशमी	बुध	अनुराधा	९ ,,	सर्वार्थामृतसिद्धियोग (दिन ११-५१ बजेतक)
एकादशी	गुरु	ज्येष्ठा	१० ,,	धनुके चन्द्रमा दिन १-५७ बजे, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), भद्रा दिन १-०४ बजेसे रात्रि १-५४ बजेतक
द्वादशी	शुक्र	मूल	११ ,,	श्रीविष्णुपवित्रारोपण, शाकदान, दहीत्यागव्रतका आरम्भ
त्रयोदशी	शनि	पू०षा०	१२ ,,	मकरके चन्द्रमा रात्रि १-३५ बजे, शनिप्रदोषव्रत
त्रयोदशी	रवि	उ०षा०	१३ ,,	सर्वार्थसिद्धियोग (प्रातः ५-५३ बजेसे रात्रि ९-३३ बजेतक)
चतुर्दशी	सोम	श्रवण	१४ ,,	व्रतकी पूर्णिमा, ऋग्वेदियोंका श्रावणी उपाकर्म, पञ्चक आरम्भ रात्रि १२ बजेसे, भद्रा प्रातः ७-५२ बजेसे रात्रि ८-४४ बजेतक
पूर्णिमा	भौम	धनिष्ठा	१५ ,,	कुम्भके चन्द्रमा दिन १-२८ बजे, स्नान-दानकी पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, यजुर्वेदियोंकी श्रावणी, उपाकर्म, स्वतन्त्रता-दिवस, श्रीअमरनाथ-यात्रा

पढ़ो, समझो और करो

(१)

निर्लोभताका परिचय

७ जुलाई सन् १९९९ ई० की बात है। लखनऊके श्रीदिनेशकुमार पशु-विभागमें अपनी नौकरीपर जा रहे थे। सामने एक भीड़भरा चौराहा था। दिनेशजीने देखा कि एक वृद्धा माता चौराहा पार करनेकी चेष्टा कर रही हैं, पर पार नहीं कर पा रही हैं, थोड़ा आगे बढ़ती हैं, पर कोई मोटरकार या रिक्शा सामनेसे गुजर जाता है, घबड़ाकर वे पीछे लौट आती हैं। दिनेशजी दो-तीन क्षण यह सब देखते रहे, फिर उनसे रहा न गया, वे शीघ्रतासे वृद्धा माँके पास जा पहुँचे और बोले—'माँजी! आइये, मेरे साथ चलिये, मुझे भी उस पार चलना है।' माँजीके हाथमें एक बड़ा बैग था, उसे उन्होंने दिनेशजीको पकड़ा दिया और कहा—'बेटा! तुम आगे चलो मैं पीछेसे आ रही हूँ।' पर संयोगकी बात कि दिनेशजी तो चौराहा पार कर गये, पर वे माता बीचमें अटक गयीं और फिर रास्ता भी भूल गयीं। कहीं दूसरी जगह चली गयीं। दिनेशजी खोजते रहे, पर माताजीको न पा सके। अन्तमें वे अपने ऑफ़िस चले आये, बैग उन्हींके पास था। उन्होंने जिज्ञासावश बैग खोला तो उसमें लगभग सवा दो लाखका सामान था। जिसमेंसे पैंतीस सौ रुपये नक़द थे, चालीस हजारकी एफ०डी० थी, सोनेकी चेन, अँगूठी, पायल और कुछ फुटकर रुपये थे। यह देखकर दिनेशजी घबड़ा गये। सारी घटना उन्होंने अपने साहबको बता दी। संयोगसे बैगमें उन वृद्धा माताके घरका फोन-नम्बर था। वहाँ बात की गयी तो पता चला कि उस समय घरके व्यक्ति घरपर नहीं हैं। एक महिलाने फोनपर बात की। जब उन माताजीके विषयमें पूछा गया तो मालूम हुआ कि वे बेहोश पड़ी हैं। दिनेशजीने अपने साहबसे जीप माँगी। अपने रुपयोंसे सौ रुपयेका पेट्रोल डालकर तथा कुछ व्यक्तियोंको साथ लेकर वे उस पतेपर लखनऊ गये। उन माताजीको बेहोशीकी अवस्थामें देखकर दिनेशजीने उनके कानमें कहा—'माँजी! मैं वही चोर हूँ, जिसको आपने बैग दिया था। मैं बैग लेकर आ गया हूँ।' इतना सुनते ही वे माताजी हड़बड़ाकर तुरन्त उठकर बैठ गयीं। दिनेशजीने कहा—'अपना सामान देख लें।' सभी सामान पाकर वृद्धा माता बहुत प्रसन्न हुईं और उनकी आँखोंसे आभारके आनन्दाश्रु टपक पड़े। दिनेशजीका कार्य पूर्ण हो चुका था, माताजी कुछ कहें, इससे पूर्व ही वे गाड़ी लेकर अपने ऑफ़िस आ गये। वृद्धा माताकी आँखें दूरतक उनकी राह निहारती रहीं।

आज प्राय: सब जगह कलिका प्रभाव है। थोड़ी-सी धन-सम्पत्ति और पूँजीके लिये भाई-भाईमें, पिता-पुत्रमें भयंकर विवाद देखा जाना कोई बड़ी बात नहीं, पर आज भी ऐसे नि:स्वार्थ परोपकारी, निर्लोभी और त्यागी व्यक्तियोंकी कमी नहीं है, जो अपने कर्तव्योंसे एक आदर्शके रूपमें प्रतिष्ठित रहते हैं। आज भी भलाई तथा भले लोग मौजूद हैं। इन सज्जनको लाखोंकी सम्पत्ति अनायास मिल गयी थी, पर उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञान था। जो करना चाहिये था, उन्होंने वही किया। कदाचित् लोभवश वे बैग अपने पास रख भी लेते तो सुख-शान्तिसे रह नहीं पाते। उनकी अन्तरात्मा उन्हें सदा कचोटती रहती, वे ग्लानि और पश्चात्तापकी आगमें सदा जला करते। ऐसी ही भलाईके कार्योंसे धर्मकी मर्यादा स्थिर है। शास्त्रोंने तो यहाँतक कह दिया है कि सात लोग ऐसे हैं, जिनके द्वारा यह पृथ्वी धारण की जाती है। यथा—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

अर्थात् गौ, ब्राह्मण, वेद, पतिव्रता स्त्री, सत्यवादी, निर्लोभी और दानशील—इन सातने पृथ्वीको धारण कर रखा है। यह घटना निर्लोभताका किञ्चित् परिचय देती है।

—अमृतलाल

(२)

गङ्गाजलसे रोगनाशकी आश्चर्यजनक घटना

एक कल्याणकारी घटनाकी ओर मैं 'कल्याण'के पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ।

मेरी आँखोंके नीचे काले मूँगके समान एक बड़ा तथा छोटे-छोटे कई निशान हो गये थे। इनके उपचार-हेतु मैंने स्थानीय एस०एम०एस० के डॉक्टरोंसे परामर्श किया तथा करीब तीन महीनेतक उनकी दवाइयाँ भी लीं। अन्तमें डॉक्टरोंकी राय यह बनी कि इन निशानोंको ऑपरेशनके द्वारा ही हटाया जा सकेगा। चूँकि मेरी उम्र क़रीब ६२ वर्ष थी, अत: मैंने आँखके नीचेके ऑपरेशनको ठीक नहीं समझा। एक दिन मुझे ख़याल आया कि 'क्यों न इन निशानोंपर गङ्गाजलका प्रयोग किया जाय।' करीब एक महीनेतक दिनमें दो-तीन बार मैं बराबर गङ्गाजलका प्रयोग करने लगी। भगवान्‌की कृपासे अब मेरे वे समस्त काले निशान समाप्त हो गये हैं। गङ्गाजलकी इस करामातसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुई हूँ। इसीलिये इस सच्ची घटनाको लिखकर भेजी हूँ, जिससे

देशके लाखों गरीब भाई-बहन गङ्गाजलकी इस उपयोगिताको समझकर लाभ उठा सकें।

—कलावती देवी ऐरन

(३)

बालकपनकी सच्ची सेवा

मेरी आँखों-देखी यह सत्य घटना सन् १९९२ ई० की है। उस समय मेरी आयु तेरह सालकी थी। मेरा एक सहपाठी था। मेरे ही समवयस्क और मेरी ही कक्षामें पढ़नेके नाते हम दोनोंमें काफी मित्रता थी। उसका नाम संतोष और उसके पिताका नाम उमाशंकर था। हम दोनोंको माँ दुर्गाकी प्रार्थना करना बहुत अच्छा लगता था। यह समझिये कि हम दोनों माँ दुर्गाके भक्त थे। हम दोनों साथ-साथ स्कूल जाते और लौटते थे। उन दिनों गर्मीकी वजहसे स्कूल सुबह साढ़े छः बजेसे साढ़े ग्यारह बजेतक ही चलता था। एक दिनकी बात है, छुट्टीके बाद हम दोनों उछलते-कूदते घर लौट रहे थे। रास्तेमें माँ दुर्गाका एक मन्दिर है। वहाँ आते ही हम लोग ठिठक गये। लोगोंकी भीड़ जमा थी। हम लोग भी भीड़को टालते हुए अंदर घुस गये। तभी हमने देखा कि भीड़के बीच एक बूढ़ा इंसान तड़प-तड़पकर शायद अन्तिम साँसें गिन रहा है। सारे लोग बस तमाशा ही देख रहे थे, जबकि अस्पतालकी दूरी वहाँसे मात्र तीन सौ मीटर थी। मेरा दोस्त संतोष बड़ी तेजीसे वहाँसे दूसरी तरफ निकला। मैंने सोचा कि कहीं जा रहा होगा, अभी आ जायगा और फिर बूढ़े बाबाकी तरफ देखने लगा। तुरन्त ही वहाँ एक रिक्शा आ लगा, जिसपर संतोष बैठा था। यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई, शीघ्र ही बूढ़े बाबाको उठाकर हम दोनों रिक्शेसे अस्पताल ले गये। इलाजके दौरान डॉक्टर साहबने कहा कि इनका बचना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। फिर भी हम दोनोंके निवेदन करनेपर उन्होंने इलाज शुरू किया। अन्तिम स्थिति जानकर लेडी डॉक्टरने उनकी तलाशी लेनेको कहा। मेरा दोस्त तलाशी लेने लगा तो उनके पाससे दस हजार रुपयेका बंडल और कुछ फुटकर रुपया निकला, परंतु कोई पता न मिला। दवाइयोंका कोई भी प्रभाव नहीं हो रहा था। कुछ देर पश्चात् डॉक्टर साहब फिर आये और देखकर कुछ सोचने लगे। उनकी आँखोंमें निराशा भरी हुई थी। संतोषने पूछा—डॉक्टर साहब! ये ठीक हो जायँगे न? डॉक्टर साहबने उत्तर दिया—बेटा! भगवान् जाने, पर इनकी आयु आजतक ही मालूम पड़ती है। मेरा दोस्त जोरोंसे रोने लगा। लोग समझाने लगे, पर उसकी रुलाई और भी बढ़ती जा रही थी। तब फिर लेडी डॉक्टरने कहा कि इनका पूरा शरीर जोरोंसे सहलाओ और भगवान्का नाम लो। बस, संतोष उनके पूरे बदनको सहलाने लगा। सहलानेके क्रममें उसकी आँखोंसे अश्रुधारा गिर रही थी, परंतु उसके मुखसे मात्र माँ दुर्गाके नामका ही उच्चारण हो रहा था। माँकी कृपासे करीब एक घंटे बाद बूढ़े बाबा हिलने-डुलने लगे। सबको थोड़ा संतोष मिला और इलाज जोरोंसे होने लगा। थोड़ी देर बाद जब बूढ़े बाबा बोलनेके काबिल हो गये तो संतोष उनके ही पैसोंमेंसे प्रसादके लिये बतासा खरीदकर माँके मन्दिरमें चढ़ाकर लौटा। माँकी कृपासे बूढ़े बाबा ठीक हो गये और वे बहुत आशीर्वाद देकर अपने घर चले गये।

बादमें मैंने संतोषसे पूछा कि तुम बूढ़े बाबाके लिये इतना रो क्यों रहे थे? तो उसने बताया कि एक तो मैंने कभी ऐसा परोपकारका कार्य नहीं किया और आज मौका मिला तो इन बाबाकी ऐसी बुरी हालत थी कि मेरा सारा श्रम व्यर्थ ही होनेवाला था, अगर बाबाको कुछ हो जाता तो मैं जीवनभर अपनेको माफ़ नहीं कर पाता, पश्चात्तापकी आगमें जलता रहता और स्वयंको ही बाबाकी मौतका जिम्मेदार मानता। पर मेरी माँ दुर्गाने बड़ी कृपा की जो उन्होंने बाबाको बचा लिया और मेरा श्रम सफल कर दिया, दूसरी बात यह थी कि बाबाके पास जो हजारों रुपये थे, पता नहीं कैसे और कहाँसे उन्होंने एकत्र किये थे तथा न जाने अपने घर-गृहस्थीके किस कार्यके लिये सँजोकर रखे थे, बाबाको कुछ हो जाता तो उनके घरवाले रुपयोंके बिना परेशान होते। उसपर बाबाके न रहनेका शोक! बाबा कौन हैं, कहाँ रहते हैं, यह भी मुझे पता नहीं था। मैं ऐसी स्थितिमें क्या करूँगा—यह सोच-सोचकर मुझे रुलाई आ रही थी और रुकनेका नाम ही नहीं लेती थी, पर मेरी माँने सब ठीक कर दिया। अब मुझे जो संतोष और सुखका अनुभव हो रहा है, वह मैं बता नहीं सकता हूँ। यह कहते हुए मेरा मित्र 'मेरी माँ कितनी अच्छी' माँकी रट लगाता हुआ भावविह्वल-सा हो गया।

अपने मित्रकी बात सुनकर मुझे भी रोमाञ्च हो आया और यह लगा कि इतनी छोटी-सी उम्रमें माँने हमें ऐसा नेक कार्य करनेकी प्रेरणा दी है। 'हे माँ! तुम कितनी दयालु हो', यह सोच-सोचकर मैं मुग्ध-सा हो गया। आज भी बचपनकी वह घटना मुझे याद आती है तो बड़ा सुख मिलता है और गीताकी यह पंक्ति याद हो आती है कि स्वल्प भी सात्त्विक कर्मका अनुष्ठान महान् विपत्तिका रक्षक होता है—

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥' (गीता २।४०)

—अकेला राजा

(४)

अनिद्रासे बचनेके उपाय

[दैनिक जीवनमें नींदका बड़ा महत्त्व है। स्वस्थ रहनेके लिये यथोचित समयपर गहरी नींद सोना आवश्यक है। नींद न आना अर्थात् अनिद्रा अपनेमें एक भीषण रोग है, इसके अनेक दुष्परिणाम होते हैं, नींद न आनेके कई कारण हो सकते हैं, किंतु यहाँ उन सबकी चर्चा न करके अनिद्राको दूर करनेके कुछ उपायोंको दिया जा रहा है। सुविधानुसार ऋतुके अनुकूल उपचार करके आप सुख-शान्तिकी मीठी नींदका आनन्द ले सकते हैं।]

पहला विकल्प—तरबूजके बीजोंकी गिरी और सफेद खसखस अलग-अलग पीसकर बराबर वजनमें मिलाकर रख लें। इसमेंसे तीन ग्राम चूर्ण सुबह और तीन ग्राम शामको लेनेसे रातमें नींद अच्छी आयगी, रक्तका दबाव कम होगा, सिरदर्द ठीक होगा। आवश्यकतानुसार एकसे तीन सप्ताहतक लेकर देखें।

दूसरा विकल्प—छः ग्राम खसखस पावभर पानीमें कपड़छान कर लें और बीस ग्राम मिश्री मिलाकर शाम चार-पाँच बजे एक बार लें। दो-तीन सप्ताह लें, अनिद्रा दूर होगी।

तीसरा विकल्प—तीन ग्राम पोदीनेकी ताजा पत्तियाँ या दो ग्राम सूखी हुई पत्तियोंका चूर्ण पावभर पानीमें दो मिनट उबालकर छान लें। गुनगुना होनेपर इसमें दो चम्मच शहद डालकर नित्य इस खुराकको रातमें सोते समय पीनेसे गहरी नींद आ जाती है। वैसे भी पोदीना एवं शहद स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

चौथा विकल्प—एक मीठे सेबका मुरब्बा सोनेसे पहले खाकर ऊपरसे पाव-डेढ़पाव गर्म दूध पी लें तो नींद आ जायगी (शक्करकी जगह गुनगुने दूधमें शहदका प्रयोग करें तो और भी अच्छा है)। इससे दिल एवं दिमागकी कमजोरी दूर होती है। वैसे भी सोनेसे पहले गर्म दूध पीनेसे निद्रा आ जाती है। अतएव स्वस्थ व्यक्ति एवं अनिद्रा रोगीको सेबका मुरब्बा और दूध या केवल गर्म दूध पीनेका नियम बना लेना चाहिये। इस संदर्भमें एक प्रेरक सूक्ति है—

उषःकाल उठ जल पिये, मध्य कालमें मट्ठा।
रात्रि पिये जो दूध नित्य, तो होवे वो हट्ठा कट्ठा॥

पाँचवाँ विकल्प—अनिद्रामें पीपलामूल उपयोगी होता है। इसको बारीक पीसकर छानकर रख लें। दो ग्रामकी मात्रामें गरम पानी या दूधके साथ पी लें। इसके सेवनसे शरीरके किसी भागमें दर्द हो तो वह एक-दो घंटेमें दूर हो जाता है और रोगी आराम पाकर सो जाता है। इस चूर्णसे आहारके पाचनमें आसानी हो जाती है। वृद्धोंके लिये तो यह एक उत्तम योग सिद्ध हुआ है।

निद्रामें सहयोगी कुछ अन्य उपचार—

(१) कम या देरसे नींद आती हो तो सोनेसे पहले पैरोंपर विशेषकर तलवोंपर तो अवश्य ही सरसोंके तेलकी मालिश करके पैरोंको धोकर और कपड़ेसे पोंछकर शान्त मनःस्थितिमें प्रभुके शरणागत होकर सो जाना चाहिये। यह अनुभूत प्रयोग सबके लिये है। इससे नेत्रोंकी ज्योति भी बढ़ती है।

(२) नासिकाको मस्तिष्कका द्वार कहा गया है। सुगन्ध सूँघते ही मस्तिष्कमें एक मादक-सी मस्ती छा जाती है। गुलाबके इत्रको थोड़ा-सा तकियेपर लगाकर सोनेसे अच्छी नींद आ जाती है। इसी प्रकार गुलमेंहदीका तेल सूँघनेसे भी नींद आने लगती है, इसकी गन्ध अनिद्रा तथा शिराओंके प्रदाहमें भी उपयोगी होती है।

(३) जिस प्रकार माताएँ अपने शिशुको मीठी-मीठी लोरियाँ सुनाकर उसे त्वरित निद्रामें सुला देती हैं, उसी प्रकार सात्त्विक, मधुर एवं प्रिय संगीत सुनते हुए सोनेसे अनिद्रा-रोगीको सुकून मिलता है। संगीतमय तरंगोंसे उसका चित्त विश्रान्ति पाकर तन्द्रामें विलीन होने लगता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि उन्मादक एवं तीव्र ध्वनियोंसे मस्तिष्क उद्विग्न, अशान्त एवं विकारग्रस्त हो जाता है। अतः ऐसी विकृत ध्वनियोंके श्रवणसे तो सदा बचना चाहिये।

(४) कभी-कभी सर्दी लगनेसे या अन्य कारणसे खाँसी आने लगती है, इससे नींद उचट जाती है। विशेषकर वृद्ध इसके शिकार हो ही जाते हैं। अतः बलगम आसानीसे निकालनेके लिये या तो मुलहठी अथवा बहेड़ेके छिलकेका टुकड़ा या अदरखका टुकड़ा अथवा एक लौंग (कोई एक वस्तु) सोते समय मुँहमें रखकर चूसते रहनेसे खाँसीका दौर घट जाता है। कफ आरामसे निकल जानेसे खाँसीकी गुद-गुद बंद होकर निद्रा आ जाती है। वैसे भी खाँसी, दमा एवं श्वास-रोगोंमें लौंगके सेवनसे लाभ होता है। दाँतके दर्दमें भी यह रामबाणका काम करता है।

(५) हमेशा आशावादी बनिये। जो होता है, अच्छा ही होता है, इन विचारोंके साथ सोते समय सांसारिक मोह-माया त्यागकर कलकी चिन्ता परमपिता परमेश्वरपर छोड़ दें तो आपको आत्मसंतोष मिलेगा और कलकी नयी सुबह ऊर्जाशक्तिसे आपका स्वागत करेगी। इस प्रकार आप स्वयंके चिकित्सक एवं सुखके दाता बनिये और नित्य मीठी नींदका भी आनन्द लीजिये। —नृसिंहदेव अरोड़ा

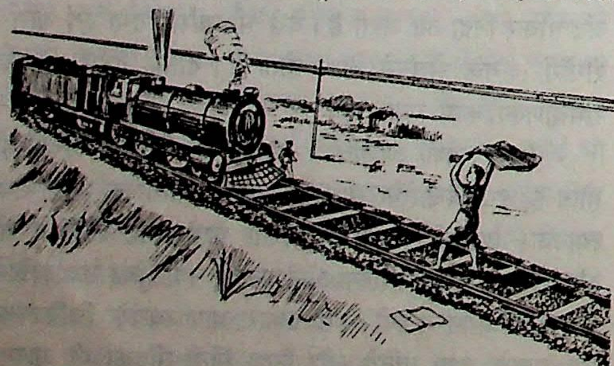
मनन करने योग्य

एक निडर बालकका परोपकारी कार्य

मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि मैं एक ऐसे छात्रके कार्यके विषयमें लिखने जा रहा हूँ, जो अपनी जानकी परवा न कर हजारोंकी जान बचानेके लिये सहर्ष तैयार हो गया। यह दैवी प्रेरणा थी, जिससे वह अपने कर्तव्यके लिये अपनी जानतककी परवा न कर सका और अपने-आपको सहर्ष जोखिममें डालकर दूसरोंकी जान बचानेके लिये सफल प्रयत्न किया। शायद भारतके अधिकांश लोग इस निर्भीक छात्रको न जानते हों।

बात काफी पुरानी है—अक्षयवर राय नामक छात्र गाजीपुर इण्टर कॉलेजमें पढ़ता था। वह ग्यारहवीं कक्षाका छात्र था। उसे प्रतिदिन अपने घरसे शहरमें पढ़नेके लिये आना पड़ता था। उसका घर शहरसे थोड़ी दूरीपर था। उसे स्कूल आते समय रेलवे-लाइन पार करनी पड़ती थी। एक दिन वह पढ़नेके लिये घरसे शहरके लिये आ रहा था। जब वह रेलवे-लाइनके नजदीक पहुँचा तो उसकी निगाह स्वाभाविकरूपसे रेलवे-लाइनकी तरफ चली गयी। उसने देखा कि रेलवेकी लाइन खराब हो गयी है, जिससे ट्रेन उलट सकती है और हजारों मनुष्य कालके गालमें जा सकते हैं।

रेलवे-लाइनके खराब होनेके विषयमें सोच ही रहा था कि देखता है कि पैसेंजर ट्रेन आ रही है। वह तत्काल



अपने शरीरसे कमीज़ निकालकर खतरेकी सम्भावनाका निर्देश करने लगा। ट्रेन-ड्राइवरने उसे ऐसा न करनेके लिये सीटीद्वारा चेतावनी दी; परंतु भारत-माँका यह लाड़ला सपूत, अध्यवसाय-नदका मगरमच्छ हिमालयकी भाँति अपने कर्तव्य-पथपर अचल रहा। उस समय उसके मस्तिष्कमें परोपकारके सिवा कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ रही थी। लाचार होकर ड्राइवरको ट्रेन रोक देनी पड़ी। ट्रेन उससे थोड़ी दूरपर जा रुकी। ड्राइवर और गार्ड—दोनों व्यक्ति आवेशमें आकर उसके पास पहुँचे। वहाँ जानेपर उन्होंने देखा कि रेलवेकी लाइन खराब हो गयी है। यदि छात्रने ऐसा करके ट्रेनको रोक न दिया होता तो हजारोंकी जानें चली जातीं। ड्राइवर और गार्ड अपने उस कार्यके लिये बड़े लज्जित हुए और उससे क्षमा माँगी।

धन्य है वह छात्र, जिसने अपने-आपको मौतके मुँहमें ढकेलकर हजारोंकी जानें बचायीं। उसके इस प्रकारके साहसी कार्यकी खबर शीघ्र ही बिजलीकी तरह सर्वत्र फैल गयी। छात्रके वीरतापूर्ण कार्यके लिये तत्कालीन प्रधान मन्त्री पं० नेहरू और गृह-मन्त्री पं० पन्तने उसे बधाईका तार भेजा और राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र बाबूने उसे स्वर्णपदक प्रदान किया। मद्रासके तत्कालीन राज्यपालने उसे दक्षिण भारतकी यात्राके लिये निमन्त्रित किया। दैनिक पत्र 'आज'-ने अपने सम्पादकीय टिप्पणीमें उस छात्रकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

भारतको ऐसा साहसी छात्र पैदा करनेपर गर्व है। छात्रोंको उसके आचरणसे शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये कि यदि दूसरोंकी भलाईके लिये प्राणोंकी बाजी लगानी पड़े तो उन्हें मौतका आलिङ्गन करनेमें रञ्चमात्र भी संकोच न करना चाहिये।

॥ श्रीहरिः ॥

कागजके मूल्यमें अप्रत्याशित वृद्धि

कागजके उत्पादकोंने सुसंगठित होकर मात्र एक वर्षकी अवधिमें छपाईके सामान्य कागजके मूल्यमें लगभग २५ प्रतिशतकी भारी वृद्धि की है। ऐसी चर्चा है कि आगे भी इस प्रकारकी मूल्यवृद्धि होती रहेगी। इसका शिक्षा एवं सत्साहित्यके प्रचारपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। **आज चरित्र-निर्माण-सम्बन्धी सत्साहित्यके प्रसारकी महती आवश्यकता है। ऐसे समयमें कागजके मूल्योंमें नियंत्रण अति आवश्यक है।**

गीताप्रेस विगत ७५ वर्षोंसे अपने सत्साहित्य लागतसे भी कम मूल्यमें उपलब्ध कराता आ रहा है। हमारा प्रयास है कि हम पुस्तकोंके मूल्योंमें वृद्धि कम-से-कम करें और अगले संस्करणोंसे ही करें, जिससे वर्तमान मूल्यपर चिप्पी आदि लगाकर पुस्तक-विक्रेता पाठकोंसे छपे मूल्यसे अधिक मूल्य न ले सकें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

जयपुरमें अब गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंके अधिकृत थोक-विक्रेता नहीं

अभीतक राजस्थान क्षेत्रके पुस्तक-विक्रेताओंको थोक पुस्तकें हमारे भूतपूर्व अधिकृत विक्रेता—श्रीगीताप्रेस-पुस्तक-प्रचार-केन्द्र, जयपुरद्वारा भेजी जाती थीं। **जयपुरमें अब गीताप्रेसका कोई अधिकृत पुस्तक-विक्रय-केन्द्र नहीं है।** अतः विक्रेता थोक पुस्तकें **गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान—2609, नयी सड़क; दिल्ली—110006** (फोन—011-3269678; फैक्स 3259140)-से प्राप्त कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

'कल्याण'का वर्तमान (जनवरी सन् २००० ई० का) विशेषाङ्क—

'संक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क'—इच्छुक सज्जन मँगानेमें शीघ्रता करें

'गरुडमहापुराण' एक पवित्र वैष्णव पुराण है। इसके श्रवण, मनन और पठनमात्रसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसके पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड)-में भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मकी महिमा तथा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ-सेवन, देव-पूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्र-विहित शुभ कर्मोंमें जन-जनको प्रवृत्त करनेके लिये लौकिक एवं पारलौकिक पुण्यफलप्रद आदिका वर्णन है। इसमें परलोकका वर्णन तथा संसारके आवागमनसे मुक्त होनेकी विधि भी वर्णित है।

'गरुडमहापुराण' के उत्तरखण्डमें प्रेतकल्पका विवेचन है जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें मृत्युका स्वरूप, मरणासन्न व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्यों एवं दानादिके वर्णनके साथ विविध नरकों तथा स्वर्ग एवं वैकुण्ठ आदिका मार्मिक शिक्षाप्रद चित्रण है। संक्षेपमें **'गरुडमहापुराण'**-की समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि मनुष्यमात्रको आसक्तिका त्याग कर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होते हुए सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये।

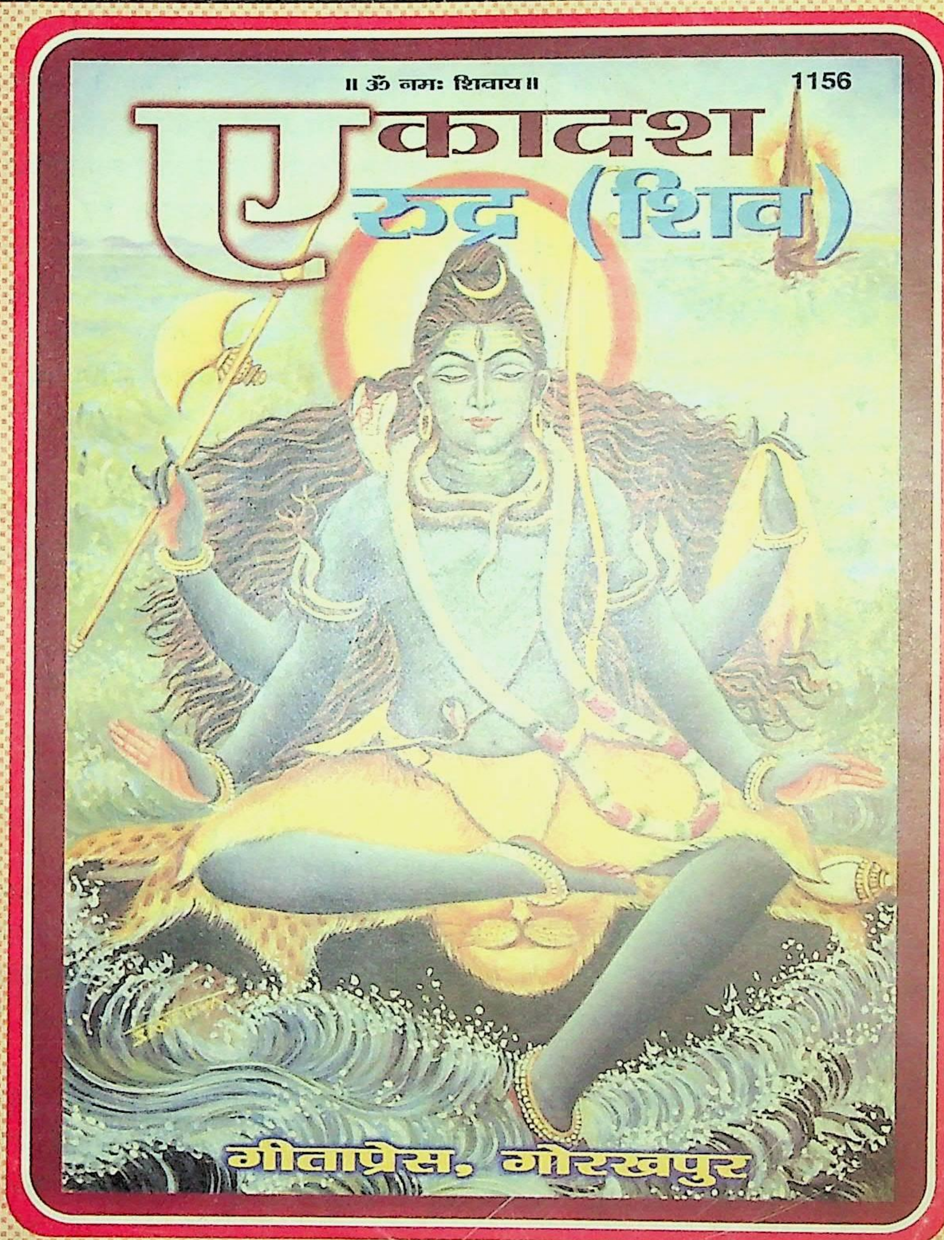
आकर्षक सचित्र आवरणसे युक्त इस विशेषाङ्कमें (परिशिष्टाङ्कसहित) कुल तेरह बहुरंगे चित्र एवं प्रसंगानुसार अनेक शिक्षाप्रद सादे चित्र भी दिये गये हैं। वार्षिक सदस्यता-शुल्क रु० १०० (सजिल्दका रु० ११०) है। विदेशके लिये US $ 11 (भारतीय मुद्रा रु० ४७५) समुद्री डाकसे एवं US $ 22 (भारतीय मुद्रा रु० ९५०) हवाई डाकसे है। 'कल्याण'के दसवर्षीय ग्राहक भी बनाये जाते हैं। कागजके मूल्योंमें आकस्मिक अत्यधिक वृद्धि हो जानेके कारण न चाहते हुए भी 'कल्याण' का दसवर्षीय शुल्क तात्कालिक प्रभावसे क्रमशः अजिल्दका रु० १००० एवं सजिल्दका रु० ११५० करनेको बाध्य होना पड़ा है। आशा है कल्याणप्रेमी सुविज्ञ पाठक इसे सहजभावसे स्वीकारकर अपना सप्रेम सहयोग पूर्ववत् प्रदान करते रहेंगे। **'संक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क'** की अब सीमित प्रतियाँ ही बची हैं; अतः इच्छुक सज्जनोंको इसे शीघ्र मँगाकर विशेष लाभ उठाना चाहिये। कृपया इस अङ्कके ग्राहक आप स्वयं तो बनें ही; अधिकाधिक संख्यामें दूसरोंको भी ग्राहक बनाकर भगवद्भावोंके प्रचार-प्रसारमें सहयोगी हों।

व्यवस्थापक—**कल्याण-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

रजि० समाचारपत्र—रजि० नं० २३०८/५७
प्र० ति० ३१-५-२०००

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

LICENCE NO.-3 LICENSED TO-POST WITHOUT PRE-PAYMENT



सभी वेदादि शास्त्र, पुराण एवं उपनिषद् भगवान् रुद्रकी अनन्त महिमासे मण्डित हैं। आशुतोष होनेके कारण ये उपासकोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। पुराणोंमें एकादश रुद्रोंके भिन्न-भिन्न नाम मिलते हैं। शैवागममें इनके नाम क्रमशः—शम्भु, पिनाकी, गिरीश, स्थाणु, भर्ग, सदाशिव, शिव, हर, शर्व, कपाली तथा भव बतलाये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर इनके ध्यान, परिचय तथा लीलाका अत्यन्त मनोहर चित्रण किया गया है। प्रत्येक रुद्रके परिचयके साथ उसके बायें पृष्ठपर उनका आकर्षक चित्र भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त औढरदानी शिव, हरिहरात्मक शिव, अर्धनारीश्वर शिव, पञ्चमुख शिव, गङ्गाधर शिव तथा महामृत्युञ्जय शिवकी लीला-कथाओंके साथ उनके आकर्षक चित्र भी दिये गये हैं। कवर-पृष्ठ दोपर विष-पान करते हुए भगवान् रुद्रका अत्यन्त मनोहर चित्र दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक सबके लिये विशेष उपयोगी है। आकार ३७ X २७ सें० मी०, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य रु० ५०, डाकखर्च रु० १८ (रजिस्ट्रीसे) अतिरिक्त।